UNIVERSAL LIBRARY

OU_186484
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H63348/T83D Accession No. G.H. 2594

Author त्रिपाठी, राजदेव।

Title धान की खेती। 1959.

This book should be returned on or before the date last marked below.

धान की खेती

जापानी पद्धति से

राजदेव त्रिपाठी

१९५९

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

यूनेस्को के सहयोग से

पहली बार : १९५९
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
सत्यपाल धवन,
दी सैन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

चावलों से हम सब परिचित हैं, उनका उपयोग भी करते हैं, लेकिन वे कितने प्रकार के होते हैं, कैसी जलवायु और भूमि में पैदा होते हैं, उनकी खेती किस प्रकार की जाती है, फसल को कीड़े-मकोड़ों से कैसे बचाया जा सकता है, उनकी पैदावार में किस तरह वृद्धि हो सकती है, आदि-आदि बातों को कम ही लोग जानते हैं।

इस पुस्तक में इनसब बातों की संक्षेप में जानकारी दी गई है। साथ ही उसकी खेती की नई पद्धति की, जिसे 'जापानी पद्धति' कहते हैं, विस्तार से चर्चा की गई है। इस पद्धति का प्रयोग हमारे देश में कई स्थानों पर किया गया है और किया जा रहा है। लोगों का अनुमान है कि इस पद्धति के द्वारा धान की पैदावार को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। चावल की हमारी आवश्यकता को देखते हुए इसके उत्पादन की वृद्धि से निस्संदेह देश को बड़ा लाभ होगा।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़ने से सामान्य पाठकों का ज्ञान बढ़ेगा, साथ ही खेती के कार्य में संलग्न व्यक्तियों को भी बहुत-सी आवश्यक जानकारी प्राप्त होगी।

—मंत्री

विषय-सूची

१.	धान की खेती	७
२.	जलवायु, भूमि और खाद	१७
३	धान के शत्रु	२८
४.	धान की खेती की प्रचलित पद्धतियां	३७
५.	जापानी पद्धति	५२
६.	जापानी पद्धति से खेती	६०
७.	जापानी पद्धति का प्रयोग और परिणाम	७३
८.	जापानी पद्धति का आकर्षण	८२
९.	जापानी पद्धति से भविष्य	९

धान
की
खेती

: १ :

धान की खेती

हिंदी में एक लोक-गीत है। उसमें कहा गया है कि एक बार सब अन्नों ने मिलकर अपने राजा का चुनाव करने के लिए एक सम्मेलन करने का निश्चय किया। छोटे-बड़े सभी अन्न उसमें भाग लेने के लिए इकट्ठे हुए। बड़ी चहल-पहल रही। गेहूं को अपने गौर वर्ण पर और इस बात पर कि मेवा-पकवान उसीसे बनते हैं और उसकी कदर बड़े-बड़े लोग करते हैं बड़ा गर्व था तो चने को अपनी ताकत पर। जौ को घमंड था कि वह सबसे पुराना अन्न है और सोमरस उसीसे बनता है। यही नहीं, वह सुपाच्य है और रोगियों के लिए पथ्य में भी वही काम आता है। मटर को अपनी गोल-मटोल और चिकनी काया पर गर्व था और वह यह सोचकर फूली नहीं समा रही थी कि हर छोटे-बड़े घर में उसकी पहुंच है। अमीरों के छोले और चाट से लेकर गरीबों की रोटी और दाल उसीकी बदौलत चलती है। सबसे अधिक गर्व उसे इस बात का था कि जहां जौ और गेहूं आदि दूसरे अन्न केवल रोटी या केवल दाल के काम आते हैं, उसका उपयोग रोटी और दाल दोनों के लिए होता है। हालांकि इस बात में चना भी उसकी बराबरी करता है मगर वह रूखा-सूखा है और मुख्यतः घोड़ों आदि के काम आता है। मटर जैसी मोहकता उसमें नहीं है।

इसी प्रकार लगभग सभी अन्न अपनी-अपनी मूंछों पर ताव दिये अपने-अपने प्रचार-कार्य में जुटे थे और अपने पक्ष में अधिक-से अधिक वोट हथियाने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन एक महाशय थे, जो अपनी दोहरी खोल के भीतर लेटे मस्ती की नींद ले रहे थे। उन्हें जैसे न तो इस चहल-पहल की खबर थी और न वोट हथियाने की चिंता ही। वे थे चावल।

सम्मेलन शुरू हुआ। छोटे-बड़े सभी अन्न आ-आकर अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार यथास्थान बैठते गये। सबसे पहले गेहूं महाशय भाषण देने खड़े हुए। उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में अपने महत्व पर प्रकाश डाला। उसके बाद जौ ने अपना बखान करते हुए अपनी उपयोगिता के पक्ष में आयुर्वेद के कई उद्धरण पेश किये, किंतु बूढ़ा होने के कारण वह जल्दी ही बैठ गया। चना बोलने के लिए उतावला हो रहा था। खड़ा होते ही उसने धुंआधार भाषण शुरू कर दिया। उसकी कड़कदार आवाज सुनकर चावल की आंखें खुलीं और वह अपनी खोल छोड़कर सभा-मंडप में आगया। उसके आते ही सभा-मंडप एक भीनी सुगंधि से गमक उठा। सभीकी आंखें उसकी ओर लग गईं। चने ने सबका ध्यान अपनी ओर से हटते देखा तो मारे गुस्से के भाषण बीच में ही बंद करके बैठ गया। मटर ने चने को बैठते देखा तो वह समझ गई कि अब उसकी दाल नहीं गलने की। अतः वह चुपचाप बैठी रही, बोली कुछ नहीं।

अब धवल वेश में अपने चारों ओर सुगंधि बिखेरते हुए चावल महाशय की बारी आई। वह बोलने के लिए खड़े हुए तो श्रोताओं ने तालियां बजाकर उनका स्वागत किया। मुस्कराते हुए उन्होंने अभिनदंन स्वीकार किया और बोलना शुरू किया—

"भाइयो मुझसे पहले जो लोग बोल चुके हैं, उनके गुण-दोषों के बारे में मैं कुछ नहीं कहना चाहता। इसका निर्णय करना आप लोगों का काम है। साथ ही मैं और लोगों की तरह अपनी तारीफ के पुल बांधकर अपने मुंह मियां मिट्ठू भी नहीं बनना चाहता। मैं अपने बारे में बस दो-चार बातें कहना चाहता हूं। पुराना खानदानी होने में धरती का कोई भी अन्न मेरा मुकाबला नहीं कर सकता। वेद इसके साक्षी हैं। मेरा वंश बहुत बड़ा है। अनगिनत रंग-रूपों में मैं धरती के कोने-कोने में छाया हुआ हूं। मेरे वंश के कुछ ऐसे चावल हैं, जिनके लिए साधारण लोग तो क्या, बड़े-बड़े अमीर तक तरसते हैं। लेकिन यह न समझिये कि मैं गरीबों से घृणा करता हूं। गरीब मुझे बहुत प्यारे हैं और मैं गरीबों को प्यारा हूं। है कोई अन्न, जिसे मनुष्यों से लेकर देवताओं तक के मस्तक पर चढ़ने का गौरव प्राप्त हो? ऐसा कोई भी शुभ अथवा धार्मिक कार्य नहीं है, जो मेरे बिना पूरा हो। मेरा महत्व और मेरी पवित्रता का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है?"

इतना सुनते ही भीड़ ने एक स्वर से आवाज लगाई—"चावल हमारा राजा है। चावल हमारा राजा है। चावल राजा की जय!" सब अन्नों ने मिलकर चावल का राजतिलक किया और तबसे चावल अन्नों का राजा है। कहते हैं, इस पराजय के कारण गेहूं का हृदय फट गया जो आज भी दिखाई देता है और चना उसी अफसोस के मारे सूखकर पिचक गया और आज तक पिचका हुआ है।

यह कहानी कल्पित है, पर इससे अन्नों में चावल की श्रेष्ठता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अपने गुणों, उपयोगिता तथा व्यापक

प्रयोग के कारण अर्थात् बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय होने के नाते चावल का स्थान वास्तव में सब अन्नों में प्रमुख है। वह सचमुच अन्नों का राजा है और आज भी उसके राज्य का दिन-दूना रात

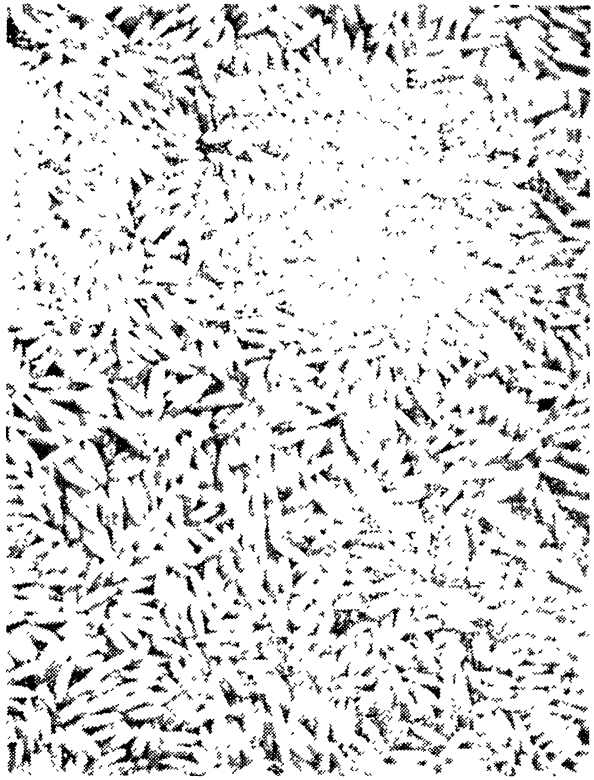

'अन्नों का राजा'

चौगुना विकास और विस्तार हो रहा है। संसार में खेती के योग्य जितनी जमीन है, उसके एक-तिहाई भाग पर चावल अर्थात्

धान की ही खेती होती है।

धान को कूटकर उसका छिलका, जिसे भूसी कहते हैं, हटा देने पर चावल निकल आता है। इसी चावल को पका देने पर उसे भात कहते हैं। यद्यपि शहरों में भात को ही चावल कहा जाने लगा है, तथापि चावल का अभिप्राय बिना पके चावल से होता है। भात का हमारे जीवन में इतना महत्व है कि कहीं-कहीं गांवों में भोज देने को 'भात देना' कहते हैं, भले ही उस भोज में भात के बजाय पूरी-पकवान ही क्यों न खिलाया जाय। चावल का एक नाम और भी है—'अक्षत'। अक्षत अर्थात् जो टूटा हुआ न हो। अक्षत को शुभ मानते हैं। यह बड़ा पवित्र नाम है। हिंदुओं का कोई भी धार्मिक अथवा शुभ कार्य ऐसा नहीं है, जिसमें अक्षत का प्रयोग न होता हो। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक संस्कार में अक्षत का उपयोग होता है।

संसार में धान की खेती कबसे प्रारंभ हुई, यह इतिहास का विषय है। कुछ विद्वानों का कहना है कि ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व अर्थात् आज से लगभग पांच हजार वर्ष पहले से धान की खेती होती आ रही है। इसके पहले धान जंगली पौधे के रूप में पाया जाता था। आज भी स्वयं जंगली तौर से उगनेवाला धान कुछ जगहों पर तालाबों में होता है। इसके चावल को तीनी (तिन्ना) कहते हैं और इसका प्रयोग विशेषकर व्रतों और त्योहारों के अवसर पर होता है।

चावल का महत्व चीन में भी बहुत था। कहा जाता है कि चीन में पहले चावल सर्व-साधारण का भोजन नहीं था। केवल सम्राट् के भोजन में ही इसे शामिल किया जाता था। सम्राट् को छोड़कर बाकी लोग दूसरे अन्नों पर गुजर करते

थे। यह भी कहा जाता है कि धान की खेती सबसे पहले चीन में हुई। वहां से भारत में आई। किन्तु इसपर विश्वास करने का कोई कारण नहीं मिलता। भारत का चावल से बहुत पुराना सम्बन्ध है। हमारे प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थ ऋग्वेद में कई स्थलों पर चावल का वर्णन आया है। उससे न जाने कितने समय पहले से ही भारत में धार्मिक कार्यों में उसका उपयोग करने की प्रथा थी। यही नहीं, भारत के दक्षिण और पूर्वी भाग में लोग जंगली धान के चावल को भोजन के लिए भी उपयोग में लाते थे।

संसार की आधी आबादी का मुख्य भोजन चावल है। भारत की आबादी के लगभग तीन-चौथाई लोग मुख्यतः चावल पर ही गुजर करते हैं। भारत में गेहूं की खेती से धान की खेती का क्षेत्रफल कोई तिगुना और उपज चौगुनी है। संसार में लगभग २१ करोड़ एकड़ भूमि पर धान की खेती होती है, जिससे कुल मिलाकर करीब १०.७ करोड़ टन चावल पैदा होता है। वस्तुतः चावल एशिया का मुख्य अन्न है। संसार में जितना चावल पैदा होता है, उसका ९५ प्रतिशत तो दक्षिण-पूर्वी एशिया के उष्ण कटिबन्ध और समशीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित देशों में पैदा होता है। चावल की खपत भी लगभग उतनी ही इन्हीं देशों में होती है।

भारत के जितने क्षेत्र में धान की खेती होती है, संसार में दूसरे किसी देश के उतने क्षेत्र में इसकी खेती नहीं होती। देश के विभाजन से भारत के धान के क्षेत्र में कुछ कमी आगई है, फिर भी लगभग ७.३ करोड़ एकड़ जमीन में धान की खेती होती है जो खेती के योग्य सारी जमीन का एक-तिहाई है। भारत की धान की कुल उपज २.२ करोड़ टन है।

धान एक विचित्र अन्न है। राजस्थान जैसे सूखे प्रदेश से लेकर असम जैसे अत्यधिक वर्षावाले प्रदेश में भी इसकी उपज होती है। यह समुद्र से ५–६ हजार फुट ऊंचे काश्मीर-घाटी जैसे स्थान में भी पैदा होता है और समुद्र-तट के निकटवर्ती स्थानों में भी। धान की कुछ किस्में हैं, जो ऊसर और नमकीन जमीन में भी पैदा होती हैं। किन्तु गंगा की घाटी और द्वाबा तथा दक्षिण और पूर्वी समुद्री किनारे के प्रदेशों में धान की फसल विशेष रूप से अच्छी होती है। देश की चावल की पैदावार का लगभग ९५ प्रतिशत असम, बंगाल, बिहार, बम्बई, हैदराबाद (आंध्र), मध्य-प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, केरल और उत्तर प्रदेश में होता है। अकेले बंगाल और असम में भारतवर्ष के समस्त उत्पादन का एक-चौथाई धान पैदा होता है।

चावल अपनी एक विचित्रता के लिए और प्रसिद्ध है। संसार में जितनी किस्में चावल की पाई जाती हैं, उतनी किस्में किसी दूसरे अन्न की नहीं। वनस्पति-शास्त्रियों का कहना है कि धान की लगभग सात हजार जातियां हैं, जिनमें चार हजार जातियां भारत में पाई जाती हैं। वाटसाहब नामक एक अंग्रेज ने केवल बंगाल में चार हजार तरह के धानों की गणना की थी। धान की एक जाति तो ऐसी है, जिसके छिलके के भीतर एक धान में दो चावल होते हैं। नैपाल की तराई में विचित्र प्रकार के चावल मिलते हैं। एक चावल ऐसा होता है, जो देखने में तो छोटा होता है, परन्तु पकने पर फूलकर बादाम के बराबर हो जाता है।

चावल का उपयोग केवल भात के लिए नहीं होता। भात के अतिरिक्त यह अन्य कई प्रकार से खाया जाता है। उत्तर भारत में धान से मुरमुरा (परवल या मुर्री), खील, लाई और

चिउड़ा तैयार करते हैं। यह चबैने के काम आता है। चावल की खीर तो प्रसिद्ध है ही। फसल के दिनों में नये चावल की रोटी, फरा या फरी बड़ी स्वादिष्ट होती है। गांवों में भैयादूज के दिन

धान की लहलहाती खेती

फरा बनाने का विशेष रिवाज है। मुरमुरा को बंगाल में मुरा, तिरुवांकुर में पारी और बिहार-उड़ीसा में भंजा या कोरी कहते

हैं। चिउड़ा को बंगाल में चीड़ा और बम्बई और मध्यप्रदेश के मध्य-भारतवाले भाग में पोहे कहते हैं। खील या धानी को बंगाल में खोई, पंजाब में फूलिया और तिरुवांकुर में मलारू कहते हैं। दक्षिण भारत में धान को नेल, चावल को अरिशी और भात को सादम कहते हैं। दक्षिण में चावल से इडली, दोसे, अप्पम, मुरुक्कू, शीडै, सेवै और उपमा आदि अनेक स्वादिष्ट चीजें बनती हैं।

धान का पुआल जानवरों के खाने, चटाइयां बनाने और बिछाने के काम आता है। इसकी भूसी जलाने और मिट्टी में मिलाकर कच्चे मकानों की दीवारों में लगाने के काम आती है। भूसी के नीचे का लाल छिलका, जिसे कना कहते हैं, जानवरों को खिलाने के काम आता है। गरीब लोग इसकी रोटी बनाकर खाते हैं। यह रोटी बड़ी स्वादिष्ट और पौष्टिक होती है। चावल के टूटे कणों को 'किनकी' या 'कनी' कहते हैं। इसे गरीब लोग पकाकर खाते हैं। कहीं-कहीं यह कनी जानवरों को खिलाई जाती है। किन्तु जानवरों को चावल खिलाने का रिवाज प्रायः कहीं नहीं है। हां, गाय और भैंसों को ब्याते समय समूचा धान देते हैं, जिससे उन्हें कष्ट नहीं होता और उनकी खेंड़ी गिरने में आसानी होती है। गांवों में कहीं-कहीं चावल के मांड़ या कांजी का उपयोग धोबी और जुलाहे भी करते हैं।

लेकिन सात करोड़ एकड़ से अधिक जमीन में धान की खेती करने पर भी देश में चावल की कमी बनी रहती है और प्रति वर्ष लगभग २० लाख टन हमें बाहर से मंगाना पड़ता है। चावल की यह कमी देश की बढ़ती हुई आबादी के कारण भी है। कभी-कभी प्रकृति के प्रकोप अर्थात् बाढ़, सूखा और देर-सबेर

वर्षा के कारण भी धान की फसलों की भारी मात्रा में क्षति होती है। सिंचाई के साधनों की कमी और किसानों का अज्ञान तथा लापरवाही भी कुछ अंशों में इस कमी का कारण है। यदि सिंचाई के साधनों की कमी दूर करके, अच्छे बीजों और अच्छी खाद का प्रयोग किया जाय और किसान सुधरे हुए ढंग से खेती करने पर कमर कस लें तो धान की पैदावार काफी बढ़ सकती है और देश का करोड़ों रुपया बाहर जाने से बचाया जा सकता है।

: २ :

जलवायु, भूमि और खाद

प्रकाश, जल और वायु पेड़-पौधों के लिए भी उतने ही जरूरी हैं, जितने मनुष्यों के लिए। इनमें से एक की भी कमी होने से पेड़-पौधों की पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और वे सूखने लगते हैं। मनुष्यों की तरह वनस्पतियों की भी भिन्न-भिन्न प्रकृति होती है। कोई पौधा अधिक जल पाकर ही हरा-भरा रहता है तो कोई जल की अधिकता से सूख जाता है। बहुतेरे पौधे जल के अभाव में सूख जाते हैं तो कोई जल कम रहने पर ही हरा-भरा रह सकता है। पौधों को उगने, बढ़ने, हरे-भरे रहने, फूलने-फलने और उनके फलों को पकने के लिए प्रकाश, जल और वायु ही नहीं, समय-समय पर उचित मात्रा में गर्मी की भी जरूरत पड़ती है। हर वनस्पति अपनी-अपनी प्रकृति के और आवश्यकता के अनुसार इन चीज़ों को पाती रहे, तभी वह जीवित रहकर फल-फूल सकती है अन्यथा सूखकर नष्ट हो जाती है।

जल

धान एक जलज वनस्पति है। जल ही इसका प्राण है। इसीलिए इसकी खेती वर्षा के शुरू होने के साथ-साथ आरम्भ होती है और वर्षा के अंत के साथ ही इसकी फसल तैयार होकर कटने योग्य हो जाती है। धान की खेती के लिए गरम और नम जलवायु आवश्यक है। जिन स्थानों में ३० इंच से ६० इंच तक वर्षा होती

है या सिंचाई के पर्याप्त साधन मौजूद रहते हैं वहां धान की खेती अच्छी होती है। यही कारण है कि द्वाबा और नदियों के किनारे की मट्टियों में प्रायः धान की खेती अच्छी और काफी मात्रा में होती है। २५ से ३० इंच वर्षावाले स्थानों में ऐसी किस्म के धान बोये जाते हैं, जो जल्दी तैयार होते हैं। किंतु असम और बंगाल में, जहां वर्षा अत्यधिक होती है, १५ से २० फुट गहरे पानी में भी धान की खेती होती है। उन स्थानों में जहां वर्षा कम होती है वहां साधारण किस्म के जल्दी तैयार होनेवाले धान और जहां शुरू से अंत तक वर्षा अधिक होती है, वहां ऊंची और अच्छी जाति के धान होते हैं।

जिन स्थानों में २५ इंच से कम वर्षा होती है वहां धान तभी पैदा हो सकता है जबकि सिंचाई के पर्याप्त साधन हों। धान पानी बहुत मांगता है। अतः सिंचाई के साधारण साधनों से काम नहीं चल सकता। तालाब या नहरों से सिंचाई करके धान की खेती की जा सकती है, लेकिन कुएं के पानी से सिंचाई करके धान की खेती करना किसी प्रकार बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकता। कुएं से सिंचाई करके जितना धान पैदा किया जायगा, उससे कहीं अधिक उसपर खर्च बैठ जायगा। जिन स्थानों में २५ से ४० इंच वर्षा होती है वहां भी दो-तीन बार सिंचाई करनी पड़ जाती है। सिंचाई न की गई तो पैदावार कम होती है।

वर्षा अथवा जल की कमी-बेशी के आधार पर ही धान और उसकी खेती की दो अलग-अलग किस्में हैं। जहां वर्षा कम होती है अथवा पानी कम पाया जाता है वहां शीघ्र तैयार होनेवाले धान बोये जाते हैं। ये धान खेत में छींट अथवा छिटककर बोये जाते हैं। इसलिए इन्हें 'छिटकवां धान' कहते हैं। ऐसे धान वर्षा

शुरू होते ही बो दिये जाते हैं और भादों या क्वार लगते ही काट लिये जाते हैं। इसीलिए उन्हें 'भदई' या क्वारी' कहते हैं। इनमें साठी और देहुला आदि धान मुख्य हैं। दूसरी किस्म के धान की खेती अधिक वर्षावाले स्थानों में होती है। ये धान देर से तैयार होते हैं। इन धानों की पहले एक अलग खेत में बेहन तैयार की जाती है और बाद में उसी बेहन की रोपाई की जाती है। इसीलिए इन्हें 'रोपुआ धान' कहते हैं। ऐसे धान की बेहन की रोपाई के लिए खेत में कम-से-कम ४ या ५ इंच पानी बना रहना चाहिए। पकने के समय के आधार पर रोपुआ किस्म के

धान रोपने की विधि

धान की तीन किस्में हैं। इन्हें जेठी, कतिकहा या कतकी और अगहनी या जड़हन करते हैं। अंजी, हंसराज, बॉसमती और मोतीचूर आदि प्रसिद्ध धान रोपुआ जाति के ही हैं।

पानी के ख्याल से छिटकवां धान जमई अर्थात् ऊंची जमीन में बोये जाते हैं और रोपुआ धान गड़ही अर्थात् गहरी अथवा नीची ज़मीन में जहां पानी बराबर बना रहता है, लगाये जाते हैं। तिन्नी (तीनी) और पसई नाम के दो धान ऐसे हैं जो दल-दल या नम जमीन में अपने-आप उग आते हैं। इनकी फसल काटी नहीं जाती। पकने पर बालें झाड़कर धान बटोर लिये जाते हैं। अपने-आप उत्पन्न होने के कारण ये धान पवित्र माने जाते हैं और इनका चावल व्रतों में खाया जाता है। मोटे तौर पर छिटकवां धान ६० से ९० दिन में और रोपुआ ९० से १२० दिन में तैयार हो जाते हैं। कोई-कोई धान ६० दिन में ही तैयार हो जाते हैं तो किसी-किसीके लिए १४० से १७० दिन तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। बंगाल और असम में कुछ धान ऐसे होते हैं, जो पानी के साथ-साथ २० से ३० फुट तक बढ़ जाते हैं। इनकी बालें नावों में बैठकर काटी जाती हैं।

धान की फसल मध्यम तापमान चाहती है। अधिक गर्मी अथवा अधिक सर्दी इसके अनुकूल नहीं पड़ती। शीतकाल तो धान का शत्रु है। कभी-कभी वर्षा और कभी-कभी धूप मिलते रहने से धान की फसल अच्छी होती है। बादल छाये रहने से पेड़ तो हरा-भरा दीख पड़ता है, किन्तु पैदावार कम होती है। अतः धान के लिए बदली अच्छी नहीं होती। ६० और ७० अंश (फोरनहाइट) के बीच का तापक्रम धान के लिए ठीक होता है। गर्मी और वर्षा दोनों अधिक मात्रा में धान के लिए जरूरी हैं। धान की बालों में दूध आने के समय मौसम कुछ गर्म रहना चाहिए और पकने के समय कुछ ठंडा। खेत में नमी बराबर बनी रहनी चाहिए।

भूमि

पेड़-पौधों का काम केवल प्रकाश, जल और वायु से ही नहीं चलता। उन्हें भी हमारी तरह भोजन चाहिए। क्या मनुष्य, क्या पशु-पक्षी और क्या पेड़-पौधे, सभीको प्रकृति ने उत्पन्न किया है और वह सबके साथ बराबर न्याय करती है। हम अपना भोजन मुख्यतः पेड़-पौधों से लेते हैं। पेड़-पौधे अपना भोजन कहां से ले आवें? इसके लिए उन्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं पड़ती। प्रकृति ने जमीन में ऐसे पोषक तत्त्व भर रखे हैं, जिनसे घास-पात से लेकर बड़े-बड़े पेड़ों तक का काम चलता रहता है। ये पोषक तत्त्व कहीं कम होते हैं तो कहीं ज्यादा, किन्तु जमीन का कोई अंश इन पोषक तत्त्वों से खाली नहीं है। ये पोषक तत्त्व पानी के साथ घुल जाते हैं और खुराक बनकर जड़ों के द्वारा भीतर पहुंचते हैं।

धान झखड़ा जड़वाला पौधा है। इसकी जड़ें गहराई तक नहीं जातीं। इसलिए इसको अधिक मिट्टी और गहरी जुताई की जरूरत नहीं पड़ती। जहांतक भूमि का प्रश्न है, धान साधारणतः किसी भी भूमि में पैदा किया जा सकता है। भरपूर पानी की सुविधा होनी चाहिए। धान की खेती हल्की जमीन में भी हो सकती है और भारी में भी। पानी का अच्छा प्रबन्ध हो तो ऊसर और कुछ खारी और क्षारयुक्त जमीन में भी धान पैदा किया जा सकता है। पानी भरा रहने से जमीन का नमक घुलकर कमजोर हो जाता है। इससे धान की फसल को हानि नहीं पहुंचती। रेतीली और पथरीली भूमि धान की खेती के योग्य नहीं होती, क्योंकि उसमें आवश्यक पोषक तत्त्वों की कमी रहती है। लेकिन यदि पानी की सुविधा के साथ-साथ अच्छी

खाद का उपयोग किया जाय तो यहां धान पैदा हो सकता है। बलुई जमीन को भी गोबर की खाद और चिकनी मिट्टी डालकर धान की खेती के योग्य बनाया जा सकता है; लेकिन बलुई ज़मीन में धान की खेती करना लाभदायक नहीं है।

जिस जमीन में पानी सोखकर जमा करने की शक्ति जितनी ही अधिक है, वह धान की खेती के लिए उतनी ही ज्यादा अच्छी है। इसीलिए बलुई या रेतीली जमीन को धान की खेती के लिए ठीक नहीं माना जाता। कड़ी दोमट और मटियार भूमि धान की खेती के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। नीची सतहवाली जमीन, जिसमें पानी जमा हो सके, अच्छे धान पैदा करने के लिए विशेष उपयोगी होती है। अच्छे धान के लिए खेत में से पानी बराबर बहता रहना चाहिए। पानी समान रूप मे सारे खेत में भरा रहे, इसके लिए भूमि समतल होनी चाहिए। जहां भूमि समतल नहीं होती वहां खेतों के बीच-बीच में मेंड़ डालकर छोटे-छोटे खेत अथवा क्यारियां बना लेते हैं, जिनमें पानी बराबर रुका रहता है। इन दृष्टियों से द्वाबा और नदियों के किनारे की नीची जमीन बड़ी अच्छी मानी जाती है।

मटियार और दोमट भूमि मोटे और महीन दोनों किस्म के धानों की खेती के लिए अच्छी होती है। जो धान गहरे पानी में होते हैं, उनके लिए भी मटियार भूमि अच्छी होती है। मटियार और दोमट भूमि में सिंचाई करके भी धान पैदा किया जा सकता है। इस भूमि की अच्छी तरह जुताई करने से मिट्टी पोली और भुरभुरी हो जाती है और वर्षा होने पर पानी अच्छी तरह सोखकर संचित रखती है। साधारण चिकनी भूमि भी

धान की खेती के योग्य होती है। अधिक नीची और दलदल वाली जमीन में धान के अतिरिक्त और कोई फसल नहीं उगाई जा सकती। धान की फसल कट जाने के बाद ऐसी जमीन प्रायः खाली पड़ी रहती है।

खाद

लगातार फसलें उगाते रहने से भूमि के नीचे के पोषक तत्त्व कम हो जाते हैं और खेत की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। इससे उपज कम होने लगती है। यदि भूमि उपजाऊ किस्म की है तो मिट्टी पलटनेवाले हल से जुताई करने के बाद यह शक्ति थोड़ी-बहुत मिल जाती है, लेकिन फसल को पूरी खुराक फिर भी नहीं मिल पाती। जिस तरह अपने भोजन में पोषक तत्त्वों की कमी दूर करने के लिए हम दूध, दही और घी आदि का सेवन करते हैं, उसी प्रकार भूमि में पोषक तत्त्वों की कमी दूर करने के लिए खाद का प्रयोग किया जाता है। खाद से खेतों में गई हुई उर्वरा शक्ति लौट आती है। अच्छी किस्म की खाद देने से उपज काफी बढ़ाई जा सकती है। दाने भी अच्छे और मोटे होते हैं। अतः फसलों के लिए पानी के बाद खाद का ही विशेष महत्व है।

धान के लिए नेत्रजन (नेट्रोजन), प्रस्फुरित आम्ल (फास्फरस एसिड) और पोटाश की अधिक जरूरत होती है। नेत्रजन से पौधे बढ़ते हैं। प्रस्फुरित आम्ल फलों और बीजों की उपज बढ़ाता है। पोटाश पौधों और उनकी जड़ों को पुष्ट करता है। कृषि-विशेषज्ञों का मत है कि हमारे खेतों में नेत्रजन की कमी है। बरसाती पानी, हवा, गोबर, कम्पोस्ट, खली की खाद और दालवाली फसलों से नेत्रजन काफी मात्रा में मिल सकता है।

गोबर की खाद सब खादों से सस्ती, आसानी से मिलने-वाली और लाभदायक होती है। किन्तु हमारे गांवों में लोग इसका महत्व नहीं समझते। गोबर के उपले और कंडे बनाकर जला डालते हैं। यदि आप किसी आदमी को घी डालकर आग जलाते देखें तो उसे क्या कहेंगे? अवश्य ही आप उसे मूर्ख या पागल कहेंगे। फिर फसलों के लिए घी का काम देनेवाले गोबर को आग जलाने के काम में लाना मूर्खता या पागलपन नहीं तो और क्या है? बताते हैं कि भारतवर्ष में प्रति वर्ष जितना गोबर जलाकर नष्ट किया जाता है वह सिंद्री के खाद के कारखाने जैसे बारह कारखाने जला डालने के बराबर है। इससे हम सहज ही अनुमान लगा सकत हैं कि गोबर जलाकर हम देश की कितनी बड़ी हानि करते हैं।

मनुष्यों और पशुओं के मल-मूत्र को कूड़ा-करकट, घास-फूस और पत्तियों के साथ जमा करके सड़ाने से जो खाद बनती है उसे मिश्र खाद या कम्पोस्ट कहते हैं। धान के लिए यह और भी लाभदायक है। गोबर या कम्पोस्ट को एक गड्ढे में जमा करते रहना चाहिए। वर्षा या धूप से उसका पोषक तत्त्व नष्ट न हो, इसके लिए गड्ढे के ऊपर छप्पर डाल देना चाहिए। गड्ढा भर जाने पर उसके ऊपर मिट्टी डालकर ढक देना चाहिए। खूब सड़ जाने पर इस खाद को निकालकर धान बोने से पहले खेत में डालकर खूब जोतना चाहिए, जिससे मिट्टी और खाद खूब मिल जायं। एक एकड़ भूमि में गोबर या कम्पोस्ट की लगभग २० बैलगाड़ी खाद देने से उपज अच्छी होती है।

धान के खेतों के लिए एक और सस्ती और उत्तम खाद है जिसे हरी खाद कहते हैं। जिन स्थानों में पानी आसानी से मिल

सकता है वहां वर्षा होने के डेढ़-दो महीने पहले खेत में सनई और कहीं-कहीं ढेंचा बो देते हैं। वर्षा होने के समय तक इनके पौधे बड़े हो जाते हैं। धान बोने या रोपने के लगभग एक हफ्ता पहले खेत में पटेला या हेंगा चलाकर इन्हें गिरा दिया जाता है। फिर मिट्टी पलटनेवाले हल से इन्हें मिट्टी के नीचे दबा दिया जाता है। यही पौधे मिट्टी और पानी में सड़कर खाद बन जाते हैं। हरी खाद खेतों को नेत्रजन काफी मात्रा में प्रदान करती है। इसलिए धान के

बढ़िया खाद से उत्तम फसल होती है।

लिए हरी खाद सर्वोत्तम है।

गोबर, कम्पोस्ट और हरी खाद के अलावा खली, हड्डी का चूरा, राख और रासायनिक या बनावटी खाद का भी प्रयोग होता है। खली की खादों में मूंगफली की खाद धान के लिए अच्छी होती है। हड्डी के चूरे में फास्फरस और राख में पोटाश की मात्रा पाई जाती है। ये दोनों धान के लिए आवश्यक हैं। रासायनिक खादों में अमोनियम सलफेट धान के लिए विशेष लाभदायक है। इससे नेत्रजन की कमी दूर होती है। इसे कहीं-कहीं बोआई या रोपाई के एक सप्ताह पहले सूखे खेतों में २ या ३ इंच की गहराई में कूंड़ों में डालकर मिट्टी पलट देते हैं। यदि खेत में पानी है तो रोपाई होने के एक महीने बाद चूर्ण के रूप में खेत में ऊपर से भुहरा (भुरक) देते हैं। ऐसा करते समय यदि खेत में पानी भरा है और बह रहा है तो अमोनियम सलफेट भी बह जायगा। इसलिए भुहराते समय खेत से पानी निकाल देना चाहिए। जिन खेतों में फास्फरस की कमी हो उनमें सुपरफास्फेट दिया जाता है।

रासायनिक या बनावटी खादें एक प्रकार से दवाइयां हैं। जैसे दवा किसी डाक्टर या वैद्य की देख-रेख में उसके बताने के अनुसार दी जाती है उसी प्रकार इन खादों को कृषि-विशेषज्ञों द्वारा जमीन की जांच कराकर काम में लाना चाहिए, नहीं तो लाभ से अधिक हानि होने का डर रहता है। गांवों में गोबर, कम्पोस्ट और हरी खादें आसानी से तैयार की जा सकती हैं और लाभ भी बहुत करती हैं। अतः बनावटी खादों के चक्कर में न पड़कर इन्हें ही काम में लाना ज्यादा अच्छा है।

हमारे भोजन में भात के साथ-साथ दाल का बहुत पुराना

साथ है। खेती में भी इनका साथ आगे-पीछे चलता रहता है। प्रोटीन के कारण दालें जहां हमें शक्ति देती हैं वहीं दालवाले अन्नों की खेती खेत की भी उर्वरा शक्ति बढ़ाती है। धान की फसल कट जाने के बाद उन्हीं खेतों को जोतकर चना, मटर, मूंग, मसूर और उरद आदि बो देते हैं। इससे दो लाभ होते हैं। एक तो खेत खाली नहीं पड़ा रहता—एक फसल और मिल जाती है, दूसरे उन खेतों को भी पौष्टिक तत्त्व मिलता रहता है।

खादों का प्रयोग वर्षामान, भूमि की किस्म और धान की जातियों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। महीन किस्म के धान को उतनी खाद की जरूरत नहीं होती जितनी मोटे किस्म के धान को होती है। कमजोर भूमि में अधिक खाद देना ठीक है, किंतु उपजाऊ भूमि में ज्यादा खाद देने से पौधे तो बढ़ जाते हैं, लेकिन अन्न की उपज कम होती है। अतः खाद के देने में बड़ी सावधानी की जरूरत है।

: ३ :

धान के शत्रु

मनुष्य ही नहीं, पेड़-पौधे भी अपने जीवन के आरम्भ से लेकर अंत तक अनेक प्रकार की आधि-व्याधियों से घिरे रहते हैं। तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े और रोग उनपर हमला करते रहते हैं। धान को भी अनेक प्रकार के कीड़ों और रोगों का सामना करना पड़ता है। धान का पौधा कड़ा होता है, इसलिए कीड़े-मकोड़ों और रोगों से इसकी अधिक हानि नहीं हो पाती। फिर भी लगभग ३० प्रकार के कीड़े और दर्जनों रोग ऐसे हैं जो धान की फसल को ५ से लेकर १० प्रतिशत तक हानि पहुंचाते रहते हैं। यहां कुछ अधिक हानि करनेवाले कीड़ों और रोगों की चर्चा करते हुए उनकी रोक-थाम के उपायों पर भी प्रकाश डाला जा रहा है।

कीड़े-मकोड़े

तना-छेदक कीड़े—यह कीड़ा पौधों के तने में घुसकर उन्हें निर्जीव कर देता है। यदि फसल में फूल लगने के समय इन कीड़ों का आक्रमण हुआ तो सारा धान 'पइया' हो जाता है। बालों में दाने नहीं भरते और वे सफेद हो जाती हैं। ये कीड़े चार प्रकार के होते हैं। उनमें से पीले रंग का कीड़ा सबसे अधिक हानि पहुंचाता है। डी० डी० टी० या बी० एच० सी० रासायनिक औषधियों द्वारा इन्हें नष्ट किया जा सकता है।

गिड़ारें—तितलियों की जाति के ये कीड़े सबसे अधिक हानि-

कारक हैं। ये दिन में तो छिपे रहते हैं, जिससे किसान इन्हें देख नहीं पाता, लेकिन रात में आक्रमण करके ये सारी पत्तियां इस प्रकार चट कर जाते हैं जैसे किसी जानवर ने खाया हो। खेत में पानी भरकर उसमें थोड़ा-सा मिट्टी का तेल डाल दें और फिर पत्तियों पर रस्सी फिरा दें तो ये कीड़े पानी में गिरकर मिट्टी के तेल से मर जाते है। डी० डी० टी० और बी० एच० सी० का छिड़काव इन्हें समूल नष्ट कर देता है।

धान-नाशक मक्खी—यह मक्खी होती तो मच्छर की तरह है, लेकिन इसकी टागें लम्बी होती हैं। यह पौधों की बीच की पत्तियों पर आक्रमण करके उन्हें सफेद या नीला बना देती है। पत्तियां अपना काम नहीं कर सकतीं और सूखने लगती है। रोपने के समय पौधों को ०.२ प्रतिशत बी० एच० सी० में डुबो लेने से, खड़ी फसल पर ५ प्रतिशत बी० एच० सी० का भुरकाव करने से इन मक्खियों को रोका जा सकता है।

गंधी—इन कीड़ों से एक विशेष प्रकार की गंध निकलती है। इनकी टांगें लम्बी होती हैं और रंग हरापन लिये हुए पीला होता है। यह कीड़ा जब बच्चा रहता है तो पौधों की कोमल पत्तियां खाता रहता है। बड़े होने पर इसके पंख निकल आते हैं और एक खेत से दूसरे में जा-जाकर फूलों का रस और बालियों का दूध चूसा करता है। इनका आक्रमण पौधों में फूल और दानों में दूध आने के समय होता है, जिससे बालियां थोथी और सफेद हो जाती हैं। बंगाल, असम और उत्तर प्रदेश में गंधी बहुत पाये जाते हैं।

हिस्पा—यह भी गिड़ारा जाति का एक कीड़ा है। इसका आकार छोटा और रंग नीला-काला होता है। बड़े होने पर इस-

के शरीर पर छोटे-छोटे कांटे निकल आते हैं और रंग बिल्कुल काला हो जाता है। इसके बच्चे पत्तियों के बीच में घुसकर उन्हें चाट जाते हैं। बड़े कीड़े पौधों पर आक्रमण करते हैं। ये पत्तियों को इस प्रकार खाते हैं कि उनपर समानान्तर रेखाएं-सी बन

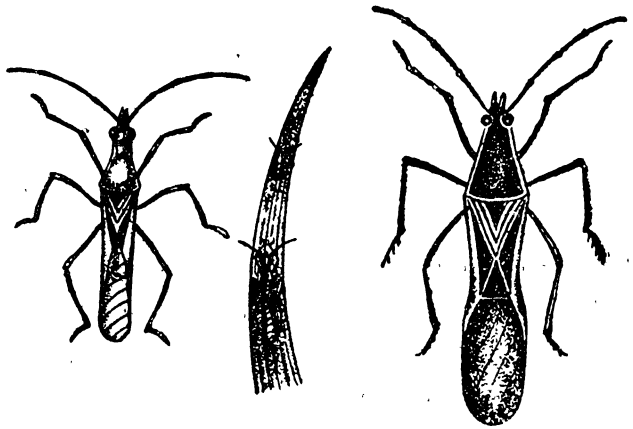

शिशु गंधी पत्तों की गंधी प्रौढ़ गंधी

जाती हैं। इनकी मादा नई पत्तियों पर अंडे देती है। एक लम्बी रस्सी मिट्टी के तेल में डुबोकर खेत में पत्तियों को छूती हुई घुमाने से इनकी रोक-थाम हो सकती है। बड़े कीड़ों को धोती या कीड़े पकड़ने की जाली द्वारा पकड़ा जा सकता है। ५ प्रतिशत बी० एच० सी० के भुरकाव द्वारा भी इनकी मुसीबत से छुटकारा पाया जा सकता है।

धाननाशक टिड्डा—धान की फसल को हानि पहुंचानेवाले टिड्डे तीन प्रकार के होते हैं। क्या बच्चे, क्या सयाने सभी फसल को हानि पहुंचाते हैं। ये पौधों की ऊपरी कोमल पत्तियों

पर धावा बोलकर उन्हें खा जाते हैं। जब ये जोर का धावा बोलते हैं तो पूरी-की-पूरी फसल चौपट हो जाती है। ५ प्रतिशत

शिशु टिड्डा

प्रौढ़ टिड्डा

अंडा

बी० एच० सी० का भुरकाव इन्हें नष्ट करने में काफी सहायक होता है।

पत्तीनाशक टिड्डा—यह कीड़ा छोटा और हरे रंग का होता है, जो धान की फसल को बड़ी हानि पहुंचाता है। यह नई और कोमल पत्तियों पर हमला करता है और पौधों का रस चूस लेता है, जिससे पौधे मुरझा जाते हैं। बत्ती का प्रकाश पाने पर यह झुंड-के-झुंड इकट्ठा हो जाते है। अतः खेतों में गैस के हंडे जलाकर इन्हें मारा जा सकता है। ५ प्रतिशत बी० एच० सी० पाउडर इनकी रोकथाम के लिए विशेष लाभदायक है। अधिक वर्षा

होने पर इनकी बाढ़ अपने-आप रुक जाती है।

धान-नाशक भुनगियां—गोटेदार पंखोंवाली ये भुनगियां आकार में बहुत छोटी होती हैं। धान के छोटे पौधों पर ये ढेर-की-ढेर पाई जाती हैं। ये पत्तियों का रस चूस लेती हैं, जिससे पत्तियां मुरझा जाती हैं और उनके किनारे मुड़ जाते हैं, जिनके बीच में ये अपना घर बनाकर रहने लगती हैं। एक औंस 'पाइरो कोलाइड' दो गैलन पानी में मिलाकर छिड़कने से ये समाप्त हो जाती हैं।

धान का घुन—वैसे धान में घुन कम ही लगता है। किंतु और घुनों की तरह धान का घुन भी भंडारघरों में रक्खे गये धान

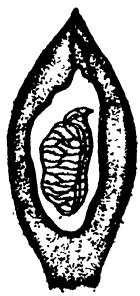

दाने में गिड़ारा

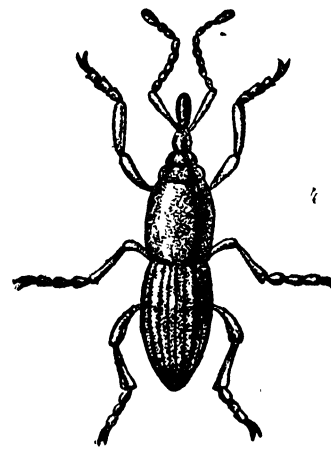

प्रौढ़ घुन

के दानों पर ही हमला करता है। धान के बाहरी छिलके को छेदकर यह चावल खाने लगता है। यदि घुन बहुत लग गये तो ढेर-का-ढेर धान आटा अथवा धूल बन जाता है। यह कीड़ा छोटा और गहरे रंग का होता है। कार्बन बाई सल्फाइड या बी०

एच० सी० छिड़ककर इनसे मुक्ति पाई जा सकती है।

धान को हानि पहुंचाने में चूहों का भी कम हाथ नहीं है। खेतों से लेकर खलिहानों तक में ये धान की बालियां कुतरकर अपने बिलों में जमा कर लेते हैं। गोदामों में रखे हुए धान और चावल को भी ये काफी चट कर जाते हैं। खेतों और खलिहानों में इनके बिलों में पानी भरकर और घरों में चूहेदानी से या इन्हें मारने की दवाओं का प्रयोग करके इनसे बचा जा सकता है।

धान कूटने के बाद चावल प्रायः मिट्टी के बर्तनों, कनस्तरों और कोठारों आदि में रखा जाता है। यदि सावधानी न बरती गई तो बहुत-सा चावल घुन और जाला आदि अनेक छोटे-छोटे कीड़ों से नष्ट हो जाता है।

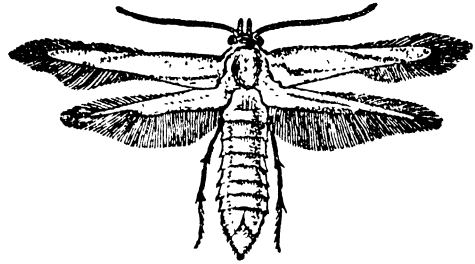

गोदाम का कीड़ा

धान और चावल को हानि पहुंचानेवाले और खा जानेवाले कीड़ों से बचने के लिए उन्हें गोदामों में रखते समय बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। धान को गोदाम में रखने से पहले उन्हें खूब सुखा लेना चाहिए। इनके रखने की जगह सीलदार न हो। कोठारों या खत्तियों में आग जलाकर, गंधक की धूनी देकर या कीड़े मारनेवाली दवा छिड़ककर कीड़ों को नष्ट कर देना

चाहिए। मिट्टी के बरतनों और कनस्तरों में गंधक की धूनी दे देनी चाहिए। राख या चूना मिलाने से भी कीड़े नहीं लगते। फर्श पक्का हो और दीवारों और दरवाजों में छेद न हो, नहीं तो चूहे और कीड़े-मकोड़े घुस जाते हैं। गेमेक्सीन, क्लोरोसोल और डी० डी० टी० या बी० एच० सी० छिड़कने से भी कीड़े-मकोड़ों से बचाव हो सकता है।

रोग

धान के रोगों की संख्या धान और उसकी फसल को नष्ट करनेवाले कीड़ों-मकोड़ों से कम है। धान की फसल को रोगों से उतनी अधिक हानि नहीं होती, जितनी कि कीड़े-मकोड़ों से होती है। फिर भी कुछ ऐसे रोग हैं, जिनके लग जाने पर कभी-कभी बड़ी हानि उठानी पड़ती है।

ब्लास्ट—इस रोग का प्रभाव पहले पत्तियों पर पड़ता है। पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे और धारियां पड़ जाती हैं, जिससे पत्तियां मुरझाकर सूख जाती हैं। कभी-कभी इसका प्रभाव पत्तियों की खोल, गांठों, फूलों और दानों पर भी दिखाई देता है। बालियों में दाने नहीं पड़ पाते। यह एक प्रकार का छूत का रोग है और एक फसल से दूसरी फसल तक पहुंचता रहता हैं। इसकी रोक-थाम के लिए अधिक खाद देना बन्द कर देना चाहिए। धान की रोपाई एकाध हफ्ते आगे-पीछे कर देने से रोग नहीं लगने पाता। धान की कुछ ऐसी किस्में हैं जिनमें यह रोग नहीं लगता। कृषि-विशेषज्ञों से पूछकर ऐसे धानों को उगाना चाहिए।

भुरैटा—ब्लास्ट की तरह यह रोग भी पत्तियों पर लगता है। इसके धब्बे भूरे रंग के होते हैं, जिनके बीच का हिस्सा सूख जाता

हैं। यह रोग तने और बालियों पर भी हमला करता है, जिससे तने की गाड़ें काली पड़ जाती हैं और उनमें दाना नहीं पड़ता। इससे बचने के लिए बीज को कुछ समय तक गरम पानी या २ प्रतिशत फारमलीन के घोल से भिगोकर बोना चाहिए। सुधरी जाति के उन धानों को बोना चाहिए, जिनमें ये रोग नहीं लगते।

लाल कजली—इस रोग का विशेष आक्रमण बंगाल और बिहार में होता है। इस रोग के कारण पौधों में बड़े और फूले हुए दाने पैदा होते हैं। इनके भीतर से पीला या लाल रंग का पदार्थ निकलता है। इस रोग के कारण का पता नहीं लग पाया है और न इसकी रोक-थाम का कोई उपाय ही निकला है।

मर-रोग—इस रोग के कारण पत्तियों का ऊपरी भाग पीला पड़ने लगता है और उनके कोशों में काले रंग के जीवाणु जम जाते हैं। धीरे-धीरे बढ़कर यह रोग पौधे को निर्जीव कर देता है। इस रोग के जीवाणु पौधों की जड़ों और मिट्टी में पड़े रहते हैं और अगली फसल पर फिर आक्रमण करते हैं। इस रोग को दूर करने के लिए खेत से पानी निकाल देना चाहिए। बोने के पहले खेत को खूब जोतकर छोड़ देने से इसके अणु धूप से नष्ट हो जाते हैं।

बंट—इस रोग का प्रभाव बालियों पर पड़ता है। भूसी के नीचे दाने काले बुरादे की तरह हो जाते हैं। दानों को ठंडे पानी में डालकर पसाने से हल्के दाने, जो रोगी होते हैं, बह जाते हैं। शेष दानों को सल्फर के आटे के घोल में डुबोकर २४ घंटा रखने से इस रोग की रोक-थाम हो जाती है।

इनके अतिरिक्त और भी छोटे-मोटे बहुत-से रोग हैं, किंतु उनसे कोई विशेष हानि नहीं होती। धानों के किसी भी रोग की

रोक-थाम के लिए साधारणतः नीचे लिखे उपाय काम में लाये जा सकते हैं—

१. फसल कटने के बाद ठूंठों को जला देना चाहिए।

२. अधिक खाद देना बंद कर देना चाहिए।

३. सिंचाई और पानी की निकासी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

४. सुधरे हुए उन किस्म के धानों को बोना चाहिए जिनमें रोग नहीं लग पाते।

५. मिट्टी या लकड़ी के बरतनों में बीजों को कीटाणु-नाशक दवाओं के साथ मिलाकर रखना चाहिए।

: ४ :

धान की खेती की प्रचलित पद्धतियां

वर्षा, सिंचाई की सुविधा और भूमि की किस्म को ध्यान में रखते हुए देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार से धान बोया जाता है। किंतु सारे देश में धान बोने की मुख्य रूप से दो पद्धतियां प्रचलित हैं। १. छिटकवां पद्धति से, २. पौध रोप कर या बेहन लगाकर। यद्यपि छिटकवां पद्धति से धान की बोआई करने से उपज उतनी नहीं होती, जितनी कि रोपुवां पद्धति से लगाये गये धान की होती है, फिर भी देश में छिटकवां पद्धति से धान बोने का प्रचलन अधिक है। धान का खेती की कुल भूमि के २/३ भाग में छिटकवां पद्धति से धान ही बोया जाता है। इसका कारण यह है कि छिटकवां पद्धति से बोने में रोपुवां पद्धति से बोने की अपेक्षा कम खर्च पड़ता है। पौध या बेहन लगाने में काफी आदमी लगते हैं और उस समय आदमियों की मांग इतनी बढ़ जाती है कि ज्यादा मजदूरी देने पर भी आदमी नहीं मिलते। इस तरह मजदूरी में ही खर्च बहुत हो जाता है। कभी-कभी तो पौध रोपने के लिए आदमी न मिलने के कारण रोपुवां धान के लिए तैयार खेत बिना धान रोपे ही पड़े रह जाते हैं।

छिटकवां पद्धति

छिटकवां अर्थात् छिटककर धान बोने की तीन पद्धतियां हैं—हाथ से बीज फेंककर, नारी या नाई द्वारा कतारों में तथा

बियासी पद्धति से। इन तीनों पद्धतियों में धान छिटककर ही बोया जाता है। पहली पद्धति में खेत तैयार करने के बाद उसे देशी हल से जोतकर धान का बीज हाथ से फेंककर सारे खेत में छिटक देते हैं। इसके बाद फिर हल चलाकर खेत जोत देते हैं। इससे धान मिट्टी में अच्छी तरह मिल जाता है। फिर पटेला या हेंगा चला देते हैं, जिससे खेत समतल हो जाता है। पटेला या हेंगा चलाने से खेत समतल होने के साथ-साथ मिट्टी के ढेले भी फूट जाते हैं और घास-फूस ऊपर आ जाता है। इन ऊपर आये हुए घास-फूसों को इकट्ठा करके खेत के बाहर फेंक देते हैं।

नारी या नाई द्वारा धान कतारों में बोया जाता है। इससे हाथ से फेंककर बोने की अपेक्षा धान का बीज कम लगता है। छिटककर बोने में प्रति एकड़ बीज की औसत मात्रा ६० सेर होती है; किंतु नारी या नाई द्वारा बोने से अधिक-से-अधिक २० या २५ सेर बीज लगता है। इस प्रकार नारी या नाई द्वारा बोने में किसान की काफी बचत होती है। साथ ही कतार में बोये जाने के कारण फसल की निराई और कुलपाई में भी आसानी होती है। कहीं-कहीं धान के साथ उरद, मूग, कोदो और अरहर आदि बोते हैं तो कुछ स्थानों में ज्वार, मक्का और कपास के साथ भी धान बोते हैं।

बियासी पद्धति में भी धान छिटककर ही बोया जाता है। अन्तर केवल यह है कि जब पौधे ९-१० इंच के हो जाते हैं तो पानी बरसने पर या खेत में पानी भरकर उसे देशी हल से आर-पार जोत देते हैं और उसपर हल्का-सा पटेला या हेंगा चला देते हैं। प्रायः औरतें हल के पीछे-पीछे चलकर उखड़े हुए धानों को खाली जगहों में लगाती जाती हैं। इस तरह घने उगे हुए धानों

का घनापन कम हो जाता है और घास-फूस भी दबकर सड़ जाते हैं। साथ ही उखड़कर फिर लगने के कारण पौधे मजबूत होते हैं और फसल भी अच्छी होती है।

बंगाल में धान प्रायः छिटकवां पद्धति से ही बोया जाता है। असम, बंगाल और मद्रास आदि राज्यों में, जहां धान की फसल के बाद कोई और फसल उस खेत में नहीं बोई जाती, फसल को जड़ों के ऊपर से काटते हैं। इन्हीं जड़ों को सींचकर या पानी बरसने पर उनसे दूसरी फसल ली जाती है। इसे 'जड़ी की फसल' कहते हैं। उपज अथवा लाभ की दृष्टि से जड़ी की फसल अच्छी नहीं होती। जिन स्थानों में धान काटकर उन्हीं खेतों में चना, मटर और मसूर की खेती की जाती है, उनमें जड़ी की फसल ठीक नहीं होती।

कुछ स्थानों में चैती की फसल काटने के बाद गर्मी में ही खेत को जोतकर उसमें सूखा धान छिटककर बो देते हैं और पटेला या हेंगा चलाकर छोड़ देते हैं। पानी बरसने पर ये धान जम आते हैं। इनके कुछ बड़े होने पर खेत में पटेला या हेंगा चला देते हैं, जिससे खेत के बड़े ढेले फूट जाते हैं। इस प्रकार बोने को उत्तर प्रदेश में 'धुरिया बोअन' अर्थात् धूल में बोना कहते हैं।

साधारणतः पहला पानी पड़ते ही धान की बोआई शुरू हो जाती है। पानी पड़ने पर खेत की भूमि नम हो जाती है और उसे जोतकर छिटकवां पद्धति की पहली विधि के अनुसार हाथ से फेंककर धान बो देते हैं। खेत की मिट्टी नम रहने के कारण धान उग आते हैं। नम मिट्टी में बोने के कारण इसे 'रसवत' कहते हैं। सूखी जमीन की अपेक्षा नम जमीन में बीज अच्छी तरह और जल्दी उगते हैं।

छिटकवां पद्धति के अंतर्गत धान बोने की एक विधि और है। इसे 'लेव' कहते हैं। पानी बरस जाने के बाद खेत में पानी रोककर उसे जोतते हैं। फिर उसमें छिटककर धान बो देते हैं। अच्छी तरह धान उग आने के बाद उसपर हल्का-सा पटेला या हेंगा फेर देते हैं। यह पद्धति 'बियासी पद्धति' से मिलती-जुलती है। अंतर केवल इतना है कि बियासी पद्धति में धान उगने के एकाध महीने के बाद खेत में आर-पार जुताई करके पटेला चलाते हैं, किंतु इस विधि में धान उगने के बाद जुताई नहीं करते, केवल पटेला चलाते हैं।

धान की बोआई ऊपर लिखी पद्धतियों में से चाहे किसी भी पद्धति से क्यों न की जाय, खेत की तैयारी प्रायः सबके लिए एक-सी होती है। लगभग सभी पद्धतियों से बोआई के लिए लगभग एक महीने पहले खेत की तैयारी शुरू कर दी जाती है। प्रायः पानी का पहला लहरा आते ही किसानों में हलचल मच जाती है और वे हल-बैल लेकर खेतों की ओर दौड़ लगाते हैं। यदि किसी कारण वर्षा होने में विलम्ब हुआ तो किसानों के धैर्य का बांध टूट जाता है और वे सुविधानुसार थोड़ी-बहुत सिंचाई करके जल्दी ही पानी बरसने की आशा में खेत की तैयारी कर डालते हैं। धान की खेती ज्यादा जुताई नहीं लेती। अधिक-से-अधिक चार-छः जुताई काफी होती है। जुताई आर-पार होनी चाहिए। इससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है और खेत के भीतर की घास-फूस भी नष्ट हो जाती है।

प्रायः हर किसान इस बात की कोशिश करता है कि जो बीज वह बोने के लिए ले जा रहा है वह अच्छी किस्म का, मोटा और रोग-दोषरहित है। जिसके पास अच्छा बीज नहीं होता

वह या तो मोल ले आता है या गांव के किसी मुखिया-महाजन से अगली फसल तक के लिए उधार ले आता है। इसके लिए उसे नई फसल पर सवाया अन्न देना पड़ता है। यदि वह मोल लेता है तो बोआई के समय बीज महंगा होने के कारण उसे अधिक दाम देना पड़ता है। गांवों में सरकारी और सहकारी बीज-गोदामों के स्थापित होते जाने से किसान की यह समस्या अब बहुत-कुछ हल होती जा रही है। उसे ठीक भाव पर अब अच्छा बीज मिलने लगा है। अच्छी तरह फटककर साफ कर लेने के बाद धान को पानी में डाल देते हैं। इससे हल्के और खराब धान पानी के ऊपर उतरा आते हैं, अच्छा और मोटा धान नीचे बैठ जाता है। इसी अच्छे धान को सुखाकर बोने ले जाते हैं।

धान के बीज को बोने के लिए ले जाने की भी तीन विधियां हैं। जहां सूखी मिट्टी में धान बोना होता है वहां धान को साफ करके सूखा ही ले जाकर बोते हैं। 'धुरिया बोआन' और 'रसवत' आदि विधि से छिटककर बोये जानेवाले धान के सूखे बीज ही बोये जाते हैं। इस प्रकार बीज बोने का प्रचलन सबसे अधिक है। जहां खेतों में पानी रोककर 'लेव' पद्धति की तरह धान बोना होता है वहां खेत में बीज डालने से पहले उसे पानी में डालकर अंकुरित कर लेते हैं। इससे खेत में पड़ते ही धान जड़ें पकड़ लेता है। यदि धान अंकुरित करके न बोया जाय तो पानी के हिलकोरों से सिमटकर इकट्ठा हो जाने का डर रहता है। तीसरी विधि धान की बेहन या पौध तैयार करके लगाने की है, जिसका प्रयोग रोपुवां पद्धति में होता है।

रोपुवां पद्धति

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, रोपुवां धान की उपज

छिटकवां धान से अधिक होती है। यही नहीं, अच्छे और ऊंची किस्म के धानों की खेती रोपुवां पद्धति से ही होती है। इसीलिए यदि पानी की सुविधा हुई तो किसान अधिक मजदूरी देकर और अनेक परेशानी उठाकर भी रोपुवां पद्धति से धान की खेती करता है।

इस पद्धति के अनुसार धान की बेहन डाली जाती है। यही बेहन पौध के रूप में बड़ी हो जाने पर उखाड़कर धान के खेत में रोपते हैं। इसीलिए इस पद्धति को रोपुवां पद्धति कहते हैं। बेहन डालने के लिए प्रायः किसान अधिक बड़े खेत न लेकर छोटे-छोटे खेत ही लेते हैं। उत्तर प्रदेश में इस भूमि को 'बेहनौर'

धान की पौध को दूसरी जगह रोपने के लिए निकाला जा रहा है।

कहते हैं—बेहनौर अर्थात् बेहन या बीयड़ तैयार करने की जगह। ऐसी जमीन प्रायः बेहन डालने के ही काम आती है।

कहीं-कहीं पौध निकाल लेने के बाद खाली जमीन में मूंग, मसूर और मटर जैसी दालवाली फसलें तैयार करते हैं।

बेहन डालने के लिए चुनी गई भूमि को पहले यदि कोई फसल काटी गई है तो कटाई के बाद कम-से-कम छः-सात बार जोतते हैं। फिर अच्छी तरह खाद-पात डालकर खेत को साजते हैं। बेहन डालने के लिए धान को अच्छी तरह साफ करके शाम को पानी में भिगो देते हैं। भिगो देने से अच्छा धान भारी होकर बैठ जाता है और हल्का धान पानी के ऊपर आ जाता है। कहीं-कहीं धान अंकुरित हो जाने के बाद बीयड़ की भूमि में छींटते हैं। किंतु साधारणतः एक रात भिगोने के बाद ही किसान दूसरे दिन बेहन डाल देता है। बेहन डालने के समय खेत में कम-से-कम एक इंच पानी रहना चाहिए। बेहन डालने से पहले पानी-भरे खेत को खूब जोतकर कीचड़ बना देते हैं। फिर बीज को हाथ से फेंककर छींट देते है। पहले से भिगोया गया रहने के कारण धान भारी हो जाता है। इसलिए पानी में पड़ते ही मिट्टी से चिपक जाता है। दूसरे दिन खेत से पानी निकाल देते हैं। इससे धान को अंकुरित होने में सुविधा होती है। लेकिन तीसरे दिन उसमें फिर कम-से-कम एक इंच पानी भर देते हैं। पानी भरने और निकालने की यह क्रिया कहीं-कहीं आठ-दस दिन तक चलती रहती है।

बेहन डालकर किसान धान के असली खेत की तैयारी में, जहां रोपाई होती है, लग जाता है। ऐसे खेतों को उसमें बोई गई पहली फ़सल के कटने के बाद पहले से ही जोत दिया जाता है। पानी बरसने पर उसमें खाद-पात डालकर फिर जुताई करते हैं। खेत में रोपाई के लिए पानी काफी रहे, इसलिए उसकी

मेड़ें ऊंची कर देते हैं। प्रायः रोपुवां धान के खेत गहरी और नीची जगहों में होते हैं। इन खेतों को 'गड़ही' कहते हैं, गड़ही अर्थात् जहां गाड़कर अर्थात् रोपकर धान लगाया जाय। ऐसे खेतों के समूह बहुधा तालाबों में या उनके किनारे ही होते हैं। इन खेतों में प्राय. धान की ही फसल उगाई जाती है।

बेहनौर अर्थात् बायड़ की भूमि में बेहन २०-२५ दिन से लेकर ३०-४० दिन में तैयार हो जाती है। इस बीच रोपाई के लिए किसान खेत तैयार कर लेता है। यदि वर्षा समय पर हुई और खेत में रोपाई के लिए पानी रहा तो बेहनौर अर्थात् बीयड़ की भूमि से पौधे उखाड़ना शुरू हो जाता है। उखाड़ी गई इस पौध को 'जरई' कहते है। जरई या पौध को उखाड़कर उनकी जड़ की मिट्टी धो-धोकर जुट्टियां या गुच्छे बनाते और उन्हें मेड़ों पर रखते जाते हैं। इस प्रकार जितनी पौध रोपनी होती है, उतनी उखाड़ लेने के बाद इन जुट्टियों का गट्ठा बनाकर रोपाईवाले खेत में ले जाते हैं। कहीं-कहीं जरई या पौध को धान के असली खेत में रोपने से पहले दो या तीन बार जुट्टियों में ही रोपते और उखाड़ते हैं। इस क्रिया में धीरे-धीरे गुच्छों में पौध की संख्या कम करते जाते हैं।

जिस समय रोपाई का काम शुरू होता है, गांवों में एक प्रकार का आंदोलन-सा छिड़ जाता है। सभी अपने-अपने खेतों की ओर भागते नजर आते हैं। रोपाई के खेतों की ओर स्त्री-पुरुषों का झुंड उमड़ पड़ता है। एक प्रकार से खेती के मेले-जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है। रोपाईवाले खेत प्रायः गांव के बाहर तालों में या उनके पास नीची जमीन में होते हैं। वहां से किसान का खाना खाने के लिए घर आना बडा कठिन होता

है। रोपाई के दिन खाने के लिए घर आना असंभव ही समझिये। अतः किसानों की औरतें घर से खाना बनाकर खेतों में ले जाती हैं और वहीं मौका निकालकर किसान खा लेता है। जिन किसानों की औरतें भी उनके साथ ही खेत पर काम करने जाती हैं और घर पर खाना बनानेवाली और कोई नहीं रहती वे सवेरे खेत पर जाते समय ही घर से बना हुआ खाना या खाना बनाने का सामान ले जाते हैं। खेतों से कुछ दूर सूखी जमीन पर उनकी औरतें या बच्चे समय निकालकर खाना तैयार कर लेते हैं। किसान जल्दी-जल्दी खाकर फिर काम पर भाग जाता है। ऐसे मौके पर चावल न खाकर आटे की लीटी और दाल खाते हैं। चावल जल्दी पच जाता है और उसे खाकर पानी में काम करने से बार-बार पेशाब के लिए भी जाना पड़ता है। उस समय उपलों पर तैयार की गई लीटी-दाल में जो स्वाद होता है वह घर में तैयार किये गए व्यंजनों से कहीं अधिक होता है। सच कहें तो कडे की धीमी आंच पर सिके मोटे-मोटे और भूरे-लाल लिट्टे देखकर मुंह में पानी आये बिना नहीं रहता।

रोपाई का काम कुछ आसान काम नहीं है। खाद-पात से खूब सजा हुआ खेत पानी में बार-बार जोता जाता है, अतः उसकी मिट्टी सड़ जाती है। उस सड़ी हुई मिट्टी में धान की पौध को अंगूठे और उंगलियों की सहायता से गाड़ना होता है। खेत में पानी भरा रहता है। अतः किसानों के हाथ और पैर उस कीचड़-पानी में काम करते-करते खराब हो जाते हैं। रोपाई करने से पहले और बाद में वे सरसों का तेल लगाते रहते हैं। इस कार्य में थोड़ी भी लापरवाही हुई तो हाथ-पैर सड़ने की नौबत आ जाती है। थकावट दूर करने और काम में

मन रमाये रखने के लिए किसानों को स्त्रियां पौध रोपते समय गाती भी जाती हैं। जिस समय दूर-दूर तक फैले खेतों में एक

पौध रोपते समय स्त्रियां गाती भी जाती हैं।

साथ रोपाई होती है और औरतें गाते हुए रोपाई करती हैं, उस समय देखते ही बनता है।

देख-भाल

छिटकवां पद्धति से बोया गया धान अधिक देख-भाल नहीं चाहता। किंतु कम-से-कम दो-तीन बार निराई अवश्य करनी पड़ती है। धान के साथ-ही-साथ खेत में बहुत-से खर-पतवार उग आते हैं, जो धान की खूराक खींचकर उसे कमजोर बना देते हैं। निराई करके इन पौधों को बाहर निकाल लेते हैं

या खेत में पानी रहा तो उसीमें गाड़ देते हैं। निराई से निकाला गया खर-पतवार जानवरों के चारे के काम आता है और खेत में ही गाड़ दिये जाने पर वह खाद का काम देता है। निराई करते समय घने उगे हुए कमजोर और रोगी धानों को निकाल लिया

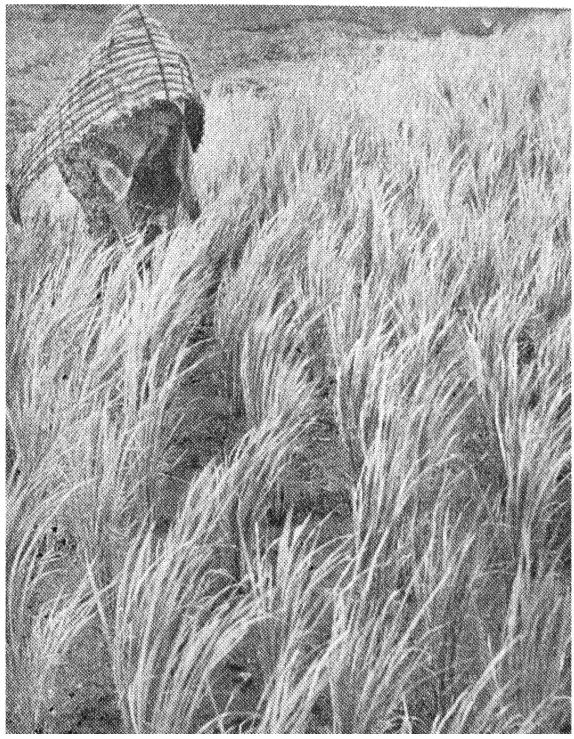

धान के खेतों में निराई

जाता है। इस तरह धान की फसल अच्छी हो जाती है। रोपुवां धान में भी कम-से-कम एक या दो बार निराई की जाती है।

निराई करते समय खेत का कीचड़ पैरों के नीचे दब दबकर उलट-पुलट उठता है और पौधों की जड़ों पर चढ़ जाता है। इस से पौधों की जड़ें मजबूत होती हैं।

पानी धान का जीवन है। पानी की कमी हुई नहीं कि धान की बाढ़ रुक जाती है और वे सूखने लगते हैं। अतः इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि पानी कहीं कम न हो जाय। पानी की कमी से ही नहीं, उसकी अधिकता से भी धान को हानि होती है। अधिक पानी से धान गलने लगता है। अतः किसान खेतों का चक्कर लगाकर देखता रहता है। पानी कम हुआ तो भराई का प्रबंध करता है और अधिक हुआ तो निकासी का। पहले कहा जा चुका है कि धान के खेत में से पानी बराबर बहता रहे तो फसल अच्छी होती है। खेतों की मेड़ें मजबूत नहीं रहतीं तो कभी-कभी उनके कट जाने से रात-भर में खेत का सारा पानी निकल जाता है। पतली और कमजोर मेड़ों में कभी-कभी केकड़ों के बिल बना लेने के कारण भी पानी धीरे-धीरे निकल जाता है। ऐसी दशा में किसान खेतों और मेड़ों की बराबर देख-भाल न करता रहे तो खेतों की फिर से भराई करने में उसे बेकार की मेहनत और मजदूरी खर्च करनी पड़ती है।

कटाई और मड़ाई

आखिर वह दिन आता है जब किसान का परिश्रम धान की बालें बनकर खेतों में दिखाई पड़ने लगता है। पुष्ट और पके हुए धानों से लदी हुई बालें झुकने लगती हैं जैसे वे सबको बता रही हों कि अपने में भरे-पूरे और सम्पन्न व्यक्ति को झुककर रहना चाहिए। अन्न से भरे-पूरे खेत को देखकर किसान अपना सारा दुख-दारिद्रय भूल जाता है। धान की लम्बी-लम्बी बालों को देख-

कर उसकी बाछें खिल जाती हैं।

चतुर किसान धान को पूरी तरह पकी हुई बालों के साथ खेत में खड़ा रहने नहीं देता। वह जानता है कि यदि धान खेत में ही पूरी तरह पक गया तो पूरा अन्न घर तक नहीं पहुंच पायगा। कटाई से लेकर खलिहान में ले जाने तक बहुत-सा धान खेत और रास्ते में ही झड़ जायगा। इसलिए धान जब पकने के लगभग हो जाता है और उसके डंठल थोड़े हरे ही रहते हैं तभी किसान धान की कटाई का अभियान शुरू कर देता है। बोआई और रोपाई की तरह कटाई के लिए भी धूम-धाम शुरू हो जाती है। गांवों में घर-घर हंसिये खनकने लगते हैं। लुहार की भट्टी से तप-पिटकर वे पत्थरों पर रगड़-रगड़कर तेज किये जाने लगते हैं। सारा गांव हाथों में हंसिये लेकर खेतों की ओर उमड़ पड़ता है। एक बार फिर खेती का मेला लग जाता है। बोआई और रोपाई के समय तो किसान के मुख पर कुछ परेशानी की झलक दिखाई पड़ती थी, अब कटाई के समय वह कहीं भी दिखाई नहीं देती। बड़े उत्साह और उमंग के साथ धान की कटाई शुरू हो जाती है और देखते-देखते चार-पांच दिन के भीतर ही जैसे धान का सारा खेत बटुरकर खलिहान में आ जाता है।

धान खलियान में आ जाने के बाद चार-छः दिन वैसे ही पड़ा रहता है। इससे तीन लाभ होते हैं। उमस के कारण धान के पकने में जो कमी रहती है वह भी पूरी हो जाती है। साथ ही बालों से दाने का लगाव कमजोर हो जाता जिससे पीटने पर धान आसानी से झड़ जाते हैं। तीसरे, किसान को अगली फसल के लिए भी काम करने का अवसर मिल जाता है।

खलियान में धान को पहले चारपाई क ऊपर पटरा रखकर या पत्थर पर पीटते हैं । पटरे से टक्कर खाकर धान बालियों से झड़कर चारपाई पर गिरता है । लगभग सारा धान इसी तरह निकल आता है। केवल कुछ धान डंठलों में लगा रह जाता है,

फसल की कटाई

जिसे फैलाकर उसके ऊपर बैलों को चलाते रहते हैं। बैलों की खुरों से दबकर धान डंठल छोड़कर अलग हो जाता है। मड़ाई या दबाई करने के बाद धान के डंठल को 'पुआल' कहते हैं।

किसान धान को स्वागत-समारोह के साथ खलियान से घर

ले आता है। सबसे पहले वह धान को अच्छी तरह सुखाकर अगली फसल के लिए बीज रख लेता है। फिर देने-लेने की बारी आती है। उसके बाद जो बचा रहता है, उसे कूटकर वह चावल निकालता है। गांवों में प्रायः चावल हाथ से कूटकर निकाला जाता है। चावल दो तरह से तैयार किया जाता है। धान को धूप में सुखाकर कूटने पर जो चावल निकलता है उसे 'अरवा' कहते हैं। कुछ लोग धान को उसन या उबालकर सुखाते हैं। फिर कूटकर चावल निकालते हैं। इस चावल को 'उसना' या 'भुजिया' कहते हैं। अरवा चावल उसना से अधिक मीठा होता है।

चावल कूटने के लिए गांवों में मूसल और ओखली का प्रयोग करते हैं। धान अधिक हो तो चक्की या ढेंकी का भी प्रयोग किया जाता है। शहरों में चावल कूटने की मिलें चलती हैं। लेकिन मिलों की अपेक्षा हाथ से कुटा हुआ चावल अधिक लाभदायक होता है। चावल के ऊपर एक प्रकार का लाल छिलका होता है। चावल में विटामिन बी०, प्रोटीन और खनिज पदार्थ आदि पोषक तत्वों की जो मात्रा होती है, वह इसीके कारण होती है। मिलों में कूटने से यह चावल सफेद और चमकदार तो हो जाता है, किंतु उसके पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। वह अधिक दिन तक गोदामों में रखने पर खराब भी होने लगता है। अतः आवश्यक है कि चावल की कुटाई और छंटाई इस प्रकार हो कि उसका छिलका अधिक न उतरने पाये। स्वास्थ्य और बचत दोनों की दृष्टि से ठीक होते हुए भी व्यापार की दृष्टि से इसे ठीक नहीं समझा जाता। कारण, शहरों के लोग सफेद और पालिश किया हुआ चावल ही खाने के आदी हैं, भले ही उन्हें इसके फलस्वरूप बेरी-बेरी जैसे रोग का सामना क्यों न करना पड़े।

: ५ :

जापानी पद्धति

जो लोग स्वयं खेती नहीं करते वे यह सोच सकते हैं कि 'धान पानी अधिक चाहनेवाला अन्न है। इसकी खेती मुख्यतः बरसात में ही होती है। उस समय पानी की कमी तो रहती नहीं है। अतः धान की खेती बहुत आसान है। उसमें विशेष परेशानी या कष्ट नहीं होता होगा।' स्वयं खेती न करने के कारण या खेती के धंधे में न रहने के कारण उनका ऐसा सोचना स्वाभाविक है। कहा भी गया है—'जाके पांव न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।' किन्तु बात ऐसी नहीं है। धान की खेती देखने में आसान मालूम होते हुए भी वास्तव में उतनी आसान नहीं है। यदि बरसात समय पर होती गई तब तो सचमुच किसान के पौ बारह हैं और यदि पानी समय-बेसमय बरसा तो किसान की चिन्ता बढ़ जाती है और धान की खेती अच्छी होने में सन्देह होने लगता है। यदि कहीं दुर्भाग्य से सूखा पड़ गया या बाढ़ आगई तो किसान का जीवन संघर्षमय हो जाता है। वह एक तरह से लड़ाई के स्तर पर काम शुरू कर देता है। उसे धान के खेत खाली नहीं पड़े रखना है। अपने भोजन और आय के मुख्य आधार धान को उगाने और पैदा करने के लिए वह हर सम्भव उपाय काम में लाता है और प्रकृति से लड़ते-लड़ते अन्त में विजय पाता है।

किन्तु गर्मी की धूप में अपनेको सुखाकर, पानी में भीगकर अपने हाथ-पैर सड़ाकर और दिन-रात चौकसी करके भी किसान

कुछ विशेष नहीं पाता है। केवल मुट्ठीभर धान उसके हाथ लगता है। उपज इतनी कम होती है कि बीज निकाल देने के बाद वर्षभर उसके अपने खाने के लिए भी पूरा नहीं पड़ता। अपने देश की आबादी के लगभग तीन-चौथाई लोगों का मुख्य भोजन चावल है, किन्तु जब धान पैदा करनेवाले किसान को ही पेटभर खाने के लिए पूरा नहीं पड़ता तो औरों को क्या पड़ेगा! फलस्वरूप चावल की मांग पूरी करने के लिए बाहर से मंगाना पड़ता है, जिसके लिए देश को अपना बहुत-सा धन बाहर भेजना पड़ता है। भारत कृषि-प्रधान देश होते हुए भी विदेशी अन्न पर गुजर करे, यह हम देशवासियों के लिए अच्छी बात नहीं है।

भारत की कुल जितनी भूमि पर खेती होती है, उसके एक-तिहाई भाग पर केवल धान की ही खेती होती है। भारत का किसान परिश्रमी भी बहुत है। फिर प्रश्न यह होता है कि इतने बड़े भू-भाग पर खेती करके भी वह धान की उपज इतनी क्यों नहीं कर पाता कि उसकी और देश की आवश्यकता पूरी हो सके, बाहर से अन्न न मंगाना पड़े? इसके उत्तर में कुछ लोगों का कहना है कि वर्षा समय पर नहीं होती, सिंचाई के साधन कम हैं और किसान लापरवाही करता है। वर्षा की अनिश्चितता और सिंचाई के साधनों की कमी तो किसी सीमा तक मानी जा सकती है, किन्तु जो लोग किसान पर लापरवाही का दोष लगाते हैं वे वस्तुतः किसान और उसके धंधे से अनभिज्ञ हैं। वे केवल अनुमान के आधार पर या सुनी-सुनाई बात कहते हैं। खेती का उन्हें स्वयं कोई व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। जिस तरह मां अपने बच्चे का हर समय ध्यान रखते हुए उसकी देख-भाल और

सार-सम्भाल में लगी रहती है, ठीक उसी तरह किसान अपनी फसल और अपने खेतों की सार-सम्भाल और चौकसी में लगा रहता है। अतः उसे लापरवाह कहना अनुचित है।

इस विषय में खेती का व्यावहारिक ज्ञान रखनेवाले कृषि-विशेषज्ञों की बात सही और ध्यान देने योग्य है। उनका कहना है कि भारत की भूमि में उर्वरा-शक्ति कम हो गई है। यही कारण है कि पहले से अधिक भूमि में खेती होने और किसान के अथक परिश्रम करने पर भी उपज कम होगई है। भूमि की यह उर्वरा-शक्ति अच्छी खाद देकर फिर प्राप्त की जा सकती है। कृषि-विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि आज का किसान कृषि-विज्ञान से अनभिज्ञ है। यह बात बिलकुल सही है। वस्तुतः अज्ञान और अशिक्षा के कारण भारत का किसान आज केवल लकीर का फकीर रह गया है। वह खेती की उन्नत पद्धति को भूलकर घिसेपिटे रास्ते पर ही चलता जा रहा है। उसके पास खाद का सर्वोत्तम साधन गोबर काफी मात्रा में रहता है, किन्तु वह उसके उपले बनाकर जला डालता है। गोबर का असली मूल्य न पहचानकर वह अपना कितना अहित कर डालता है। देश में खाद और उसके लिए साधनों की कमी नहीं है। हां, साधनों का ठीक-ठीक उपयोग करने लिए किसान के पास ज्ञान की कमी है। फसल को कीड़े-मकोड़े और रोगों से बचाने का किसान का ज्ञान अधूरा और पुराना है। इस कारण चाहते हुए भी और प्रयत्न करने पर भी बेचारा किसान इन शत्रुओं से अपनी फसल की रक्षा नहीं कर सकता। यही कारण है कि कृषि-प्रधान देश होकर भी भारत को अन्न के लिए विदेशों का मुंह ताकना पड़ता है जबकि वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के कारण वे देश भी, जो कृषि-

प्रधान न होकर उद्योग-प्रधान हैं, अपनी जरूरत से ज्यादा अन्न पैदा करते हैं और दूसरे देशों को भेजते हैं।

यह निर्विवाद है कि यदि हमारे किसान कृषि-विज्ञान के सिद्धान्तों को अच्छी तरह अपनाकर सुधरे हुए और वैज्ञानिक ढंग पर खेती करने लगें तो देश में फसल की उपज अधिक हो सकती है और हम बाहर से अन्न मंगाने के बजाय स्वयं बाहर अन्न भेज सकते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि भारत का किसान अत्यन्त परिश्रमी है। उसे केवल अच्छे बीज, अच्छे औजार और सिंचाई के अच्छे साधन मिलने चाहिए फिर तो वह अपने परिश्रम से ऐसा कर

वैज्ञानिक ढंग से खेती करने पर उत्तम फसल

दिखाये कि धरती सोना उगलने लगे। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह तभी सम्भव है जब किसान को सुधरे हुए और वैज्ञानिक ढंग पर खेती करने का ज्ञान हो। इसलिए किसान का यह कर्तव्य है कि वह अपनी और देश की उन्नति के लिए वैज्ञानिक कृषि-प्रणाली को सीखे और उसका उपयोग करे। साथ ही सरकार का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने किसानों को वैज्ञानिक कृषि-प्रणाली सीखने के लिए समुचित प्रबन्ध करे और उन्हें हर सम्भव सहायता देकर इस दिशा में आगे बढ़ाये।

बम्बई प्रदेश की सरकार ने इसी कर्तव्य से प्रेरित होकर बम्बई के निकट स्थित कोरा ग्रामोद्योग केन्द्र के प्रबंधक-मंडल के वरिष्ट सदस्य श्री प्राणनाथ कापड़िया के नेतृत्व में जापान की कृषि और गृह-उद्योग-प्रणाली का अध्ययन करने के लिए एक शिष्टमंडल सन् १९५१ में जापान भेजा था। इस शिष्टमंडल में राजकीय कृषि-विद्यालय, कोसबाद, जिला थाना के अधीक्षक श्री हरिश्चन्द्र पाटिल धान की खेती का विस्तृत अध्ययन करने के लिए विशेष रूप से भेजे गये थे।

दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों में धान की खेती प्रमुख रूप से होती है, किंतु उपज की दृष्टि से जापान का स्थान सर्वोच्च है। वस्तुतः यह जापान के लिए गौरव की बात है कि उसने केवल उद्योग-धंधों में ही नहीं, बल्कि खेती में भी अपना स्थान काफी ऊंचा बना लिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि वहां धान की खेती सुधरे हुए और वैज्ञानिक ढंग पर होती है। जापान में धान की औसत उपज प्रति एकड़ २३५२ पौंड है, जबकि अपने देश में औसत उपज केवल ७७२ पौंड प्रति एकड़ है। इस तरह

हमारे देश की तुलना में जापान प्रति एकड़ तिगुना धान पैदा करता है।

जापान पहुंचने पर श्री कापड़िया और श्री पाटिल वहां अपनाई गई धान की खेती की पद्धति से ऊंचे पैमाने पर होनेवाली उपज को देखकर हैरत में आगये। उसकी तुलना में भारत में होनेवाली धान की अत्यन्त कम उपज का स्मरण करके उन्हें बड़ा दुःख हुआ। धान की खेती करने की जापानी पद्धति में क्या जादू है कि यह जानने और जापानी पद्धति से खेती करना सीखने की इच्छा से वे धान की खेती के विश्वविख्यात विशेषज्ञ डा० इवाव कामो के पास हमात्सू गये।

डा० इवाव कामो सर्वश्री कापड़िया और पाटिल से मिलकर और उनके जापान आने का उद्देश्य जानकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि जापानी पद्धति द्वारा धान की खेती उन लोगों के सामने करके दिखाना ज्यादा अच्छा होगा। अतः उन्होंने सर्वश्री कापड़िया और पाटिल के निवास-स्थान के पास ही आधा एकड़ भूमि की व्यवस्था कर दी। इसी भूमि में डा० इवाव कामो के निर्देशन में श्री कापड़िया और श्री पाटिल ने जापानी-पद्धति से धान की खेती शुरू की। जापानी खेती के ढंग और उससे प्राप्त अपने खेत की उपज से वे दोनों बहुत प्रभावित हुए।

भारत लौटते ही सर्वश्री कापड़िया और पाटिल ने कोरा ग्रामोद्योग केन्द्र की भूमि में जापानी पद्धति से खेती करने का प्रयोग शुरू कर दिया। अपने इस प्रयोग में आशातीत सफलता पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। भारत में धान की औसत उपज लगभग ७७२ पौंड प्रति एकड़ है, किंतु अपनी प्रयोगशाला की भूमि में श्री कापड़िया ने एक एकड़ में ८००० पौंड और श्री पाटिल ने

१२,००० पौंड धान पैदा किया। निश्चय ही यह एक आश्चर्य-जनक और सफल प्रयोग था। फिर तो बम्बई राज्य में सरकारी और गैर-सरकारी कृषि-फार्मों में जापानी पद्धति से खेती करने के प्रयोग धड़ाधड़ शुरू होगये और उनमें प्रायः सभी प्रयोग-कर्त्ताओं को अच्छी सफलता मिली। विभिन्न स्थानों में औसत उपज १८०० पौंड प्रति एकड़ से लेकर ७००० पौंड तक हुई। इन सफलताओं और उपज के इन आंकड़ों ने लोगों को चौंका दिया। सभीका ध्यान इस ओर खिच गया।

देश की खाद्य-समस्या भारत सरकार के लिए सिर-दर्द बन गई है। बम्बई राज्य में होनेवाले प्रयोगों और उनकी सफलता की ओर राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद और प्रधानमंत्री नेहरू का भी ध्यान गया। उन्होंने भारत सरकार के खाद्य और कृषि-मंत्री का ध्यान जापानी पद्धति से होनेवाली धान की खेती और उसके परिणामों की ओर आकर्षित करते हुए जापानी पद्धति का और अधिक अध्ययन और परीक्षण करने का सुझाव दिया।

जापानी पद्धति से खेती के प्रयोगों और उनके परिणामों से प्रभावित होकर भारत सरकार ने इस पद्धति से खेती करने का एक देश-व्यापी आंदोलन छेड़ दिया है। देश के सभी राज्यों के खाद्य और कृषि-मंत्रालयों द्वारा अपने-अपने राज्यों में जापानी पद्धति अपनाने के लिए किसानों से जोरदार अपील की जा रही है। खाद, खेती के अन्य उपकरण, उन्नतशील बीज, सहायता के रूप में नकद रुपया और अधिकतम उपज पर पुरस्कार और उपाधियों को देने की भी व्यवस्था की गई है। रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं, चल-चित्रों और कृषि-मेलों आदि के

द्वारा किसानों को धान की खेती की जापानी-पद्धति समझाने का प्रयत्न बराबर जारी है। किसानों को सिखाने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी कृषि-फार्मों में जापानी-पद्धति से खेती करने के प्रदर्शन और प्रशिक्षण का भी प्रबंध किया गया है। जापानी-पद्धति से खेती करने के लिए खाद और पानी की सबसे अधिक जरूरत पड़ती है। देश में रासायनिक खादों के कारखाने खोलकर और नहरों और नलकूप आदि सिंचाई के साधनों की व्यवस्था करके सरकार किसानों की सिंचाई-सम्बन्धी कठिनाई भी दूर करती जा रही है। अब यह किसानों का कर्तव्य है कि वे ध्यान-पूर्वक जापानी पद्धति सीखें और उन्हें अपनाकर अपना और अपने देश का भंडार भर दें।

धान की खेती की जापानी पद्धति हमारे यहां प्रचलित रोपुवां पद्धति से मिलती-जुलती है, बल्कि यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि जापानी पद्धति रोपुवां पद्धति का ही सुधरा हुआ रूप है। अतः जापानी पद्धति अपनाने में हमारे किसानों को कोई कठिनाई नहीं होती। इस पद्धति से खेती करने की मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

१. पौधा तैयार करने के लिए उभरी हुई क्यारियां,
२. क्यारियों में कम बीज का प्रयोग,
३. क्यारियों और खेतों में अधिक-से-अधिक खाद का प्रयोग,
४. खेत में पौध की रोपाई कतारों में करना,
५. कम-से-कम पौधों की एक साथ रोपाई, और
६. निराई और कुलपाई।

अगले अध्याय में हम जापानी पद्धति से धान की खेती करने की विधि पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालेंगे।

: ६ :

जापानी पद्धति से खेती

जापान में धान की औसत उपज हमारे देश की औसत उपज से लगभग तीन गुनी अधिक है। प्रत्येक किसान अपने खेत की उपज अधिक-से-अधिक करने के लिए इच्छुक ही नहीं, प्रयत्नशील भी रहता है। इसलिए जापान में इतनी अधिक उपज की वात सुनकर हमारे किसानों के मन में इसके बारे में जानने-सुनने की उत्सुकता होना स्वाभाविक है। इतनी अधिक उपज की बात सुनकर उन्हें आश्चर्य भी हो सकता है। कुछ भोले-भाले किसान इतनी अधिक उपज की बात पर अविश्वास भी कर सकते हैं। किंतु आश्चर्य और अविश्वास की कोई बात नहीं है। जापान में किसी जादू से खेती नहीं की जाती। हमारे यहां जैसे रोपुवां धान की खेती होती है, लगभग वैसे ही उनके यहां भी खेती होती है। अंतर केवल यही है कि वे हमारे किसानों की तरह लकीर के फकीर न होकर सुधरे और वैज्ञानिक ढंग से खेती करते हैं। यही उनका जादू है, यही उनका कमाल है। धान की खेती करने की जापानी पद्धति का अध्ययन करके, उसे सीख और अपना करके हम भी वह जादू और कमाल दिखा सकते हैं। यदि हम यह कहें कि भारत का किसान अपने परिश्रम के वल पर उससे भी अधिक परिणाम लाकर संसार को चकित कर सकता है तो शायद कोई अत्युक्ति न होगी।

जापानी किसान अपने खेतों की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने के लिए

अधिक-से-अधिक खाद का प्रयोग करता है। उपज तभी अच्छी होगी, जब फसल अच्छी होगी। फसल अच्छी हो, इसलिए वह प्राकृतिक खाद के अलावा रासायनिक और बनावटी खादों का प्रयोग भी समय-समय पर और उचित मात्रा में करता रहता है। वह धान के पौधों की रोपाई अव्यवस्थित रूप से न करके कतारों में करता है, जिससे उनकी देख-भाल और निराई-कुलपाई ठीक से हो सके। जापानी किसान निराई और कुलपाई में भी अथक परिश्रम करता है। कई बार की निराई-कुलपाई धान के पौधों के लिए अमृत का काम करती है। वह बेहनौर या क्यारियों में ढेर-के-ढेर बीज न उंडेलकर कम-से-कम बीज डालता है। बेहन डालने के लिए उसकी क्यारियां भी बढ़िया खादों से अच्छी तरह सजी और उभरी हुई होती हैं। बर्फी की तरह सजी इन क्यारियों में डाले गये बीजों से जो पौध या बेहन तैयार होती है, वह देखते ही बनती है। इतने परिश्रम से उगाई गई पौध या बेहन को जापानी किसान व्यर्थ में बरबाद नहीं करता। वह हमारे किसानों की तरह पौध के मोटे-मोटे गुच्छे खेतों में नहीं रोपता। उसकी प्रत्येक गुच्छ में अधिक-से-अधिक तीन से लेकर पांच पौध होती हैं। संक्षेप में, जापानी पद्धति के जादू या कमाल का यही रहस्य है।

बीज का चुनाव

किसी भी फसल के लिए किसानों को दो चीजों का चुनाव सबसे पहले करना होता है। उनमें से एक है बीज और दूसरा खेत। दोनों का आपस में इतना घनिष्ठ संबंध है कि यदि इनमें से एक भी खराब रहा तो किसान की आशा पर पानी फिर जाता है। अच्छे-से-अच्छा बीज भी खराब खेत में पड़ जाय तो

फसल अच्छी तरह न उगेगी और उपज भी अच्छी न होगी। दाने मरे-मरे-से होंगे। इसी तरह अच्छा खेत होते हुए भी यदि बीज खराब हुआ तो परिणाम कुछ विशेष अच्छा न होगा। इसलिए जापानी किसान क्यारियों में बेहन डालने के लिए स्वस्थ, मोटा, भारी और उन्नतिशील जाति का बीज चुनता है। वह बीजों को अच्छी तरह साफ करके एक बाल्टी पानी में, जिसमें लगभग आधा सेर नमक मिला होता है, डालता है और लकड़ी से खूब चलाता है। ऐसा करने से हल्के और रद्दी बीज ऊपर आ जाते हैं और अच्छे और भारी बीज बाल्टी में नीचे बैठ जाते हैं। ऊपर आये रद्दी और हल्के बीज को निकालकर अलग कर देते हैं। बाल्टी के पेंदे में बैठा हुआ अच्छा और भारी बीज ही बोया जाता है। नमक के घोल में डालने से बीज के साथ लगे हुए कीड़े या रोग नष्ट हो जाते हैं, जिससे आगे चलकर फसल रोगी और नष्ट होने से बच जाती है। जापानी किसान बोने से पहले बीजों को ७ से १४ दिन तक पानी में भिगो रखता है। इस प्रकार अंकुरित बीज क्यारियों में डालने से जल्दी जमते हैं और उनकी पौध अच्छी होती है।

हमारे यहां जापानी पद्धति पर खेती करनेवाले नीचे बैठे हुए अच्छे बीज को निकालकर साफ पानी में फिर दो बार धोते हैं और उसे किसी कपड़े या बोरे पर छाया में सूखने के लिए डाल देते हैं। यही बीज पौध के लिए क्यारियों में डाला जाता है।

जापानी किसान इस बात पर विशेष जोर देता है कि क्यारियों में कम-से-कम बीज डाला जाय। कम-से-कम बीज डालने से पौध अच्छी तरह उगती है और स्वस्थ तथा पुष्ट होती

है। जापान में एक एकड़ के ४०वें से लेकर २७वें भाग में ५ से ६ पौंड तक बीज बोया जाता है, जिसकी पौध एक एकड़ खेत के लिए काफी होती है। भिन्न जलवायु और मिट्टी के आधार पर इस मात्रा में थोड़ी कमी-बेशी की जा सकती है। भारत में २५ × ४ फुट की क्यारी में अधिक-से-अधिक आधा सेर बीज लगता है। इस प्रकार २५ × ४ फुट नाप की २० क्यारियों में कुल १० सेर बीज लगता है, जिसकी पौध एक एकड़ भूमि में रोपाई के लिए काफी होती है। एक एकड़ में १० सेर बीज की मात्रा अधिकतम है। बम्बई राज्य में किये गए प्रयोगों के आधार पर एक एकड़ के लिए अधिक-से-अधिक १० पौंड या ५ सेर बीज काफी बतलाया गया है।

क्यारियों की तैयारी और बोआई

जापान में पिछली फसल कटते ही खेत जोत दिये जाते हैं। फसल काटने के समय खेत में नमी रहती है, अतः जुताई में आसानी होती है। जिन स्थानों में जुताई सम्भव नहीं होती, वहां खेत को खोद डालते हैं और मिट्टी के ढेलों को फोड़ देते हैं। जुताई साधारणतः ३ से ४ इंच तक गहरी होती है। जुताई के बाद खेत में से खर-पतवार या घास-फूस बीनकर बाहर निकाल दिया जाता है। फिर २० टन (लगभग ४० बैलगाड़ी) प्रति एकड़ के हिसाब से कम्पोस्ट या गोबर की सड़ी हुई खाद डालकर खूब अच्छी तरह से मिट्टी में मिला देते हैं। खेत में खाद अच्छी तरह मिल जाने के बाद २५ फुट लम्बी और ४ फुट चौड़ी क्यारियां बनाते हैं। इन क्यारियों की लम्बाई सुविधानुसार कुछ भी हो सकती है, लेकिन चौड़ाई ४ फुट ही रहती है। क्यारियां जमीन से २ या ३ इंच ऊंची होती हैं। दो क्यारियों के बीच में

एक फुट जगह छूटी रहती है। इससे क्यारियों की निराई और गुड़ाई में सुविधा होती है। क्यारियों से पानी निकालने या सिंचाई करने के लिए नाली के रूप में भी इसका उपयोग होता है।

क्यारियों में अमोनियम सल्फेट और सोडियम नाइट्रेट बराबर-बराबर मिलाकर छिड़क देते हैं। २५ × ४ फुट नाप की क्यारी में एक पौंड या आधा सेर मिश्रण काफी होता है। उसके ऊपर लगभग १/८ इंच की मोटाई में कम्पोस्ट की खाद बिछाई जाती है। खाद खूब सड़ी हुई होती है। बिछाने से पहले कम्पोस्ट की खाद को चलनी आदि से छान लेते हैं। कम्पोस्ट की खाद की यह तह पौध को ऊपर ही बने रहने देने में सहायता देती है, जिससे रोपने के लिए पौध उखाड़ते समय सुविधा होती है। कम्पोस्ट के ऊपर राख की एक पतली-सी पर्त बिछाई जाती है। राख से पौधे उत्तेजना पाकर बढ़ते हैं। राख की तह पर धान के बीज कतारों में या छिटककर बोते हैं। बोने के बाद मिट्टी की एक पतली-सी पर्त बिछा देते हैं।

इतनी सावधानी से और अच्छी तरह तैयार किये जाने के कारण इन क्यारियों में घास-फूस उगने की अधिक गुंजाइश नहीं रहती। फिर भी कुछ-न-कुछ खर-पतवार उग ही आते हैं। इस लिए आश्यकतानुसार एक या दो बार निराई-गुड़ाई करनी होती है। पहली निराई-गुड़ाई करने के बाद अमोनियम सल्फेट और सोडियम नाइट्रेट को बराबर-बराबर मिलाकर उतनी ही मात्रा में डाल देते हैं, जितनी कि बोते समय डाली गई थी। यदि पौधे अच्छी तरह न बढ़ रहे हों तो इस प्रकार खाद की एक मात्रा और दी जा सकती है। पानी अधिक होने पर नालियों से निकाल

दिया जाता है और पानी की कमी हुई तो आवश्यकतानुसार सिंचाई कर दी जाती है।

भारत में जापान की अपेक्षा पानी कम बरसता है, अतः यहां क्यारियों का चुनाव ऐसी जगह करना चाहिए, जहां पानी अथवा सिंचाई की विशेष सुविधा हो। जहां वर्षा अधिक हो, पानी का निकास ठीक न हो और मिट्टी भारी हो, वहां उभरी हुई क्यारियां बनानी चाहिए। पश्चिमी बंगाल में ये क्यारियां ३ से ६ इंच तक ऊंची बनाई जाती हैं। उभरी हुई क्यारियों में पौध जल्द तैयार होती है। लेकिन जहां सिंचाई की विशेष सुविधा न हो और मिट्टी हल्की हो वहां समतल क्यारियां बनाई जा सकती हैं। ऐसी क्यारियों की भी तैयारी ऊपर बतलाये गए ढंग पर ही करनी चाहिए। समतल क्यारियों के बीच में नालियों के रूप में एक फुट चौड़ी जगह न छोड़कर मेंड़ बना देनी चाहिए। जिन स्थानों पर खर-पतवार ज्यादा होते हैं वहां पानी से भरी या तर क्यारियां बनाई जा सकती हैं। मद्रास और आन्ध्र राज्यों में प्रायः ऐसी ही क्यारियां बनाई जाती हैं।

खेत की तैयारी और रोपाई

पिछली फसल के कटने के बाद ही खेत को जोतकर उसमें २० टन (लगभग ४० बैलगाड़ी) प्रति एकड़ के हिसाब से कम्पोस्ट या गोबर की सड़ी हुई खाद मिला देते हैं। फिर चार-छः बार अच्छी तरह जुताई करके मिट्टी को पोली और भुरभुरी बना देते हैं। जुताई ५ से ६ इंच तक गहरी होती है। इसके बात खेत में पटेला या हेंगा चला देते हैं, जिससे मिट्टी के ढेले फूट जाते हैं और खेत भी समतल हो जाता है। खेत की मेड़ें खूब अच्छी और मजबूत बनाई जाती हैं। जापानी किसान खेत की मेंड़ों

पर विशेष ध्यान देता है, क्योंकि कमजोर और टूटी-फूटी मेंड़ों में चूहे और केंकड़े अपना घर बना लेते हैं और उसमें से निकल-निकलकर पौध को हानि पहुंचाते रहते हैं। वर्षा होने पर जब खेत में पानी इकट्ठा हो जाता है तो जुताई करके खेत में रोपाई के लिए अच्छी तरह कीचड़ बना लिया जाता है।

जापानी किसान रोपाई करने से पहले खेत में रोपने के लिए निशान बनाता है। इस काम के लिए उसके पास दो

फसल इस तरह कतारों में होती है।

रस्सियां रहती हैं, जिनपर लाल धागों से निशान बना रहता है। एक रस्सी में प्रत्येक १० इंच पर लाल धागे का निशान बना रहता है। किसान खेत की दोनों मेंड़ों पर खूंटी गाड़कर इस

रस्सी को बांधता है। इस रस्सी से एक कतार को दूसरी कतार से १० इंच की दूरी पर रखने का काम लिया जाता है। दूसरी रस्सी पर निशान प्रत्येक चार या छः इंच पर रहता है। इसकी सहायता से पौध या बेहन रोपने के लिए खेत में छेद या गढ़े बनाते हैं। इस तरह प्रत्येक पौधा चार या छः इंच की दूरी पर रोपा जाता है। धान और जमीन की किस्म के अनुसार पौधों की यह दूरी थोड़ी-बहुत घट-बढ़ सकती है। कहीं-कहीं पौधों के बीच की दूरी तीन से आठ इंच और कतारों की दूरी आठ से बारह इंच रक्खी जाती है। कतारों में पौध रोपने से किसान को कई लाभ होते हैं। वह देख-भाल करने के लिए खेत में अच्छी तरह घूम-फिर सकता है। फसल की निराई-कुलपाई में भी सुविधा होती है। इसलिए जापानी पद्धति में रोपाई करने पर विशेष जोर दिया जाता है।

रोपाई के लिए पौध उखाड़ने में भी इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता है कि पौधों की जड़ों को कोई हानि न पहुंचे। पौध हाथ से बड़ी सावधानीपूर्वक उखाड़ते हैं। इसके लिए छोटे 'हो' का भी प्रयोग किया जाता है। पौध रोपते समय जापानी किसान पौध को एक ओर तर्जनी (अंगूठे के पासवाली) और बीचवाली उंगली से और दूसरी ओर अंगूठे से पकड़ता है। पौधे को सीधा जमीन में इस तरह गाड़ते हैं कि उसे कोई हानि या क्षति नहीं पहुंचने पाती। इस प्रकार रोपी गई पौध अच्छी तरह जड़ पकड़ लेती है और जल्दी बढ़ने लगती है।

जापानी पद्धति के अनुसार एक गढ़े या छेद में एकसाथ प्रायः तीन से छः पौध ही रोपी जाती है। कम पौध रोपने से केवल उनकी बचत ही नहीं होती, अपितु पौध को अच्छी तरह

बढ़ने का मौका भी मिलता है। गुच्छियों में एक साथ कम पौध रखने से वे आसानी से बढ़ती हैं और उनमें कल्ले या दौजियां अधिक फूटती हैं। जापानी किसान हमेशा कुछ पौध बचाकर सुरक्षित रखता है। जब कभी पौधे के सूखने, गल जाने अथवा और किसी कारण से खेत में जगह खाली हो जाती है तो इन्हींमें से पौध निकालकर वह उस खाली जगह में लगा देता है। इस तरह खेत में फसल एक-सी दिखाई पड़ती है और उपज में भी कमी नहीं आने पाती।

खाद

अपने देश की तरह जापान में भी धान की खेती के लिए हरी खाद का प्रयोग किया जाता है। हम अपने यहां हरी खाद के लिए सनई या ढेंचा का प्रयोग करते हैं। जापानी किसान सोयाबीन से हरी खाद तैयार करता है। हरी फसल को काट-कर छोड़ देते हैं और तीन या चार दिन बाद खेत में जोतकर अच्छी तरह मिला देते हैं। एक एकड़ भूमि में चार से लेकर सात टन तक हरी खाद दी जाती है। वहां प्राय. धान रोपने से लगभग तीन महीने पहले हरी खाद की फसल खेत में जोतकर दबा देते हैं। जापानी किसान रासायनिक खादों का प्रयोग अधिक करता है, जिससे फसल की उपज काफी बढ़ जाती है। धान की फसल के लिए जापान में एक एकड़ में ७० से ९० पौंड तक नेत्रजन (३५० से ४५० पौंड अमोनियम सल्फेट), ७० से ९० पौंड तक प्रस्फुरित आम्ल (३९० से ५०० पौंड तक सुपर-फास्फेट) और ६० से ८० पौंड तक पोटाश (१२० से १६० पौंड तक पोटाशियम सल्फेट) मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। इस मिश्रण का आधा भाग तो खेत में कीचड़ तैयार करते समय

डाल दिया जाता है और बाकी आधा भाग बाद में डाला जाता है।

जापान एशिया का पहला देश है जिसने अपने यहां फसलों के लिए बनावटी खादों का प्रयोग करना शुरू किया। वहां इस शताब्दी के पहले से बनावटी खाद इस्तेमाल होती आ रही है। दूसरे महायुद्ध के समय जब खाद के कारखाने बन्द होगये तो जापान की धान की उपज कम होगई। इससे साफ जाहिर है कि जापान की धान की इतनी अधिक उपज उर्वरकों या बनावटी खादों के कारण है।

निराई और कुलपाई

धान की फसल के लिए निराई और कुलपाई बहुत ही आवश्यक है। कुलपाई शब्द खुरपाई या खुरपियाई से बना है, जिसका अर्थ है खुरपा या खुरपी से गोड़ना। धान की निराई के साथ-साथ कुलपाई भी चलती रहती है। इससे पौधों की जड़ों के पास की मिट्टी ढीली हो जाती है। उनकी जड़ों पर भी कुछ मिट्टी चढ़ जाती है। इससे पौधों की जड़े मजबूत होती हैं और उनपर मिट्टी पड़ जाने से अधिक खूराक पाकर वे तेजी से बढ़ने लगते हैं। साथ-ही-साथ निराई करते समय जो खरपतवार मिलते हैं वे मिट्टी के नीचे दबा दिये जाते हैं वे खाद का काम देते हैं। कुलपाई से पौधों में कल्ले या दौजियां अधिक फूटती हैं।

पहली कुलपाई पौध लगाने के १५ दिन बाद की जाती है। इसके बाद हर १५ दिन के अंतर पर तीन या चार बार और कुलपाई होती है। जब पौधे खूब बढ़ जाते हैं और फूलने लगते हैं तो कुलपाई बन्द कर दी जाती है। यदि कुलपाई करते समय

अमोनियम सल्फेट, सुपरफास्फेट और कम्पोस्ट आदि खादों का भी प्रयोग किया जाय तो फसल की बाढ़ में चार चांद लग जाते हैं। कुलपाई करते समय खाद देने से विशेष लाभ यह होता है कि पानी के साथ खाद के बहने की संभावना कम रहती है। कुलपाई करने के बाद खाद डालने से ज्यादा अच्छा यह है कि पहले खाद छिटक दी जाय और तब कुलपाई की जाय। इससे खाद मिट्टी में अच्छी तरह मिल जाती है।

अपने देश में गोबर और कम्पोस्ट की खाद इतनी अधिक होती है कि खाद की दो-तिहाई जरूरत इसीसे पूरी हो सकती है। बाकी एक-तिहाई जरूरत रासायनिक या बनावटी खादों से पूरी की जा सकती है। धान की फसल के लिए नेत्रजन (नाइट्रोजन) की ज्यादा जरूरत पड़ती है और कृषि-विशेषज्ञों के कथनानुसार हमारे देश की भूमि में नेत्रजन की कमी भी है। इसलिए नेत्रजन के लिए खाद के रूप में गोबर, कम्पोस्ट, खली और हरी खाद दी जा सकती है। नेत्रजन देने के लिए हरी खाद सबसे अच्छी और सस्ती पड़ती है।

सिंचाई

धान को ज्यादा जरूरत पानी की होती है। जापान में पानी की कमी का सवाल ही नहां उठता। वहां धान की उपज अच्छी होने का एक कारण यह भी है कि उस देश में लगभग सालभर वर्षा होती रहती है। इसके अतिरिक्त वहां सिंचाई के उन्नत और पर्याप्त साधन उपलब्ध हैं। जापान में धान के ९० प्रतिशत क्षेत्र ऐसे हैं जहां सिंचाई की पूरी तरह सुविधा है। वहां निराई, कुलपाई करने और पौधों के ऊपर उर्वरकों का भुरकाव करने के लिए प्रायः खेतों से पानी निकालना पड़ जाता है।

पकने के समय धान की बालियां अक्सर झुक जाती हैं और गिरने लगती हैं। बालियों के भार से, पत्तियों की अधिकता से और कभी-कभी अधिक बढ़ जाने के कारण पौधे झुककर पानी में गिर जाते हैं और सड़कर नष्ट हो जाते हैं। कृषि-विशेषज्ञों का अनुमान है कि ऐसी दशा में ५० प्रतिशत से अधिक उपज की हानि होती है। यदि कहीं फूल आते समय पौधे पानी में गिर गये तो यह हानि और अधिक होती है। जापान के किसान बालियों और पौधों को झुकने और गिरने से बचाने के लिए बड़ी चौकसी रखते हैं। वे खेत में जगह-जगह जमीन से दो फुट ऊंची लकड़ी गाड़ देते हैं और उनपर रस्सियां बांध देते हैं। एक-दूसरे के समानान्तर, पर पांच फुट पर, ऐसी रस्सियां बांधी जाती हैं। बालियां और पौधे इन्हीं रस्सियों के सहारे टिके रहते हैं, गिरने नहीं पाते। भारी और असामयिक वर्षा होने पर इस प्रणाली से बड़ा लाभ होता है।

अपने देश में हवा और पानी के झोंकों से बालियों और पौधों को गिरने से बचाने के लिए कुछ पौधों को एक साथ बांध देते हैं। इससे वे झुकने या गिरने नहीं पाते। बालियां लगते समय पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने से भी पौधों का गिरना रुक जाता है। फिर भी कुछ-न-कुछ हानि तो हो ही जाती है।

फसल बोने और काटने के समय प्रायः हर देश के किसानों में एक उमंग और उत्साह छाया रहता है। अपनी-अपनी रीतियों और मान्यताओं के आधार पर वे इस अवसर पर त्योहार की तरह उत्सव मनाते हैं। जापान में धान की रोपाई के समय बड़े उत्साह के साथ धार्मिक ढंग पर उत्सव मनाये जाते हैं और रोपाई के पहले दिन को बड़ा शुभ माना जाता है। इस अवसर

पर स्त्रियां नये वस्त्र पहनती हैं। इस समय जापान के स्कूल बंद कर दिये जाते हैं, ताकि बच्चे धान की रोपाई में अपने माता-पिता का हाथ बटा सकें। हर लड़का या लड़की अपना यह पुनीत कर्त्तव्य समझती है कि खेतों में धान की रोपाई करके वह अपने मां-बाप या पड़ोसी की सहायता करे। धान की रोपाई के समय हमारे देश के किसानों में भी कुछ कम उत्साह नहीं रहता। वे भी इस अवसर पर त्योहार मनाते और उत्सव करते हैं।

धान की खेती की जापानी पद्धति का अध्ययन करने से यह साफ जाहिर है कि इस पद्धति से खेती करने में विदेशों से कोई कीमती सामान नहीं मंगाना पड़ता। केवल किसान के परिश्रम की विशेष जरूरत है। खादों का अधिक-से-अधिक प्रयोग, क्यारियों में रोपाई, पौध उगाने के लिए कम-से-कम बीज और रोपने के लिए कम-से-कम पौध, यही इस खेती का मूल-मंत्र है। गोबर, कम्पोस्ट और हरी खाद की हमारे देश में कोई कमी नहीं है। रासायनिक खादें सिन्द्री के कारखाने में काफी तैयार हो रही हैं। रासायनिक खाद गांव-गांव में किसानों को आसानी से मिल सके, इसके लिए ग्राम-सभाओं और सहकारी समितियों के माध्यम से सरकार द्वारा प्रबंध किया गया है। जो किसान नकद पैसा नहीं दे सकते, उन्हें फसल पर दाम देने की शर्त पर भी खाद मिलने की सुविधा है। रासायनिक खादों को खरीदने में कुछ खर्च अवश्य होगा, किंतु फसल की दुगुनी-तिगुनी उपज से किसान को उस खर्च का कई गुना अधिक मिल जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जापानी पद्धति से धान की खेती करने में हमें केवल थोड़ा-सा अधिक परिश्रम करना होता है।

: ७ :

जापानी पद्धति का प्रयोग और परिणाम

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, धान की खेती की जापानी पद्धति का अध्ययन करने के लिए बम्बई राज्य की सरकार ने सर्वश्री प्राणनाथ कापड़िया और हरिश्चन्द्र पाटिल को जापान भेजा था। व्यावहारिक अनुभव के लिए वहां उन्होंने किराये पर आधा एकड़ भूमि लेकर प्रसिद्ध जापानी कृषि-विशेषज्ञ डा० इवाव कामो के निर्देशन में स्वयं धान की खेती की। जापान से लौटकर इन दोनों महानुभावों ने बम्बई के पास कोरा ग्रामोद्योग-केन्द्र में जापानी पद्धति से धान की खेती शुरू की। भारत में जापानी खेती का यह पहला प्रयोग था।

जापान में खेती करते समय श्री कापड़िया और श्री पाटिल ने डा० इवाव कामो के कहने से पौध उगाने के लिए केवल एक पौंड बीज डाल था। इसी एक पौंड बीज की पौध उन्होंने अपने आधे एकड़ खेत में रोपकर पूरी फसल प्राप्त की थी। किंतु बम्बई में जापानी पद्धति से खेती करते समय उन्होने प्रति एकड़ दो पौंड के बजाय आठ पौंड बीज लिया। बनावटी या रासायनिक खाद का भी उपयोग उन्होंने कम किया। जापान में प्रति एकड़ जितनी खाद का उन्होंने उपयोग किया था, बम्बई में उसका आठवां हिस्सा किया। खाद की शेष कमी को उन्होंने कम्पोस्ट आदि से पूरा किया। बाकी और बातें उन्होंने डा० कामो के बतलाने के अनुसार ही कीं। फसल तैयार होने पर जो

उपज हुई, वह आश्चर्यजनक थी। श्री कापड़िया ने प्रति एकड़ ८,००० पौंड और श्री पाटिल ने १२,००० पौंड धान पैदा किया।

जापानी पद्धति से धान की खेती का दूसरा प्रयोग थाना जिले के शिम्पावली ग्रामोद्योग केन्द्र में हुआ। करजात और कोसबाद के सरकारी फार्मों में जापानी और देशी दोनों पद्धति से

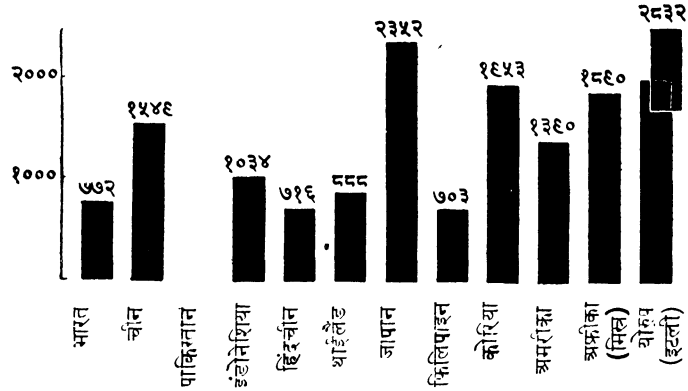

विभिन्न देशों में प्रति एकड़ उपज, पौंड में

धान की खेती साथ-साथ की गई। जापानी पद्धति से धान की औसत उपज देशी पद्धति की औसत उपज की तुलना में तीन गुनी से भी अधिक हुई। फिर तो धान की इतनी अधिक उपज देखाकर बम्बई राज्य में लगभग १५०० व्यक्तियों ने जापानी पद्धति से धान की खेती का प्रयोग शुरू कर दिया। प्रायः उन सभी प्रयोगों में लोगों को अच्छी सफलता मिली। थाना, कोलाबा, रत्नागिरी, कोल्हापुर और सूरत आदि जिले धान की खेती के लिए प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों में जापानी पद्धति से खेती के प्रयोगों म अच्छी सफलता मिली है। बम्बई राज्य के पंचमहाल में

७०८५ पौंड, कुलाबा में ६२६० पौंड और धारवाड़ में ५९०४ पौंड प्रति एकड़ औसत उपज हुई, जबकि भारत की औसत उपज केवल ७७२ पौंड प्रति एकड़ है।

बम्बई में किये गए प्रयोगों की सफलता को देखते हुए भारत सरकार ने जापानी पद्धति से खेती करने का देश-व्यापी आंदोलन चला दिया। प्रत्येक राज्य की सरकार ने इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने का काम अपने हाथ में ले लिया। शुरू में २५ राज्यों में लगभग ४००,००० एकड़ से कुछ अधिक भूमि में जापानी ढंग से धान की खेती शुरू की गई। पहले ही वर्ष में इस पद्धति से धान की उपज लगभग छः लाख टन हुई, जबकि पिछले वर्ष में यह उपज केवल दो लाख टन हुई थी।

जापानी पद्धति से खेती करने पर कहीं-कहीं धान की उपज प्रति एकड़ १०० मन से भी अधिक हुई। १९५३-५४ में मध्य-प्रदेश में प्रति एकड़ ११७.५, मध्य भारत में १२०, मैसूर में १२४.५, कुर्ग में १३२.५, हैदराबाद में १४५ और पश्चिमी बंगाल १६१.५ मन तक उपज हुई। इस प्रकार अधिक उपज करने में पश्चिमी बंगाल को देशभर में सर्वोच्च स्थान मिला। जापानी पद्धति से प्रति एकड़ अतिरिक्त औसत उपज बिहार में २८ मन, राजस्थान में ३५ मन और मध्यप्रदेश में ३८ मन रही। मध्यप्रदेश की यह अतिरिक्त औसत उपज सबसे अधिक थी।

मध्यप्रदेश के कुछ खेतों में जहां पहले प्रति एकड़ ८ मन ६ सेर धान हुआ था, वहां जापानी पद्धति से खेती करने के बाद ११७.५ मन प्रति एकड़ हुआ। इस प्रकार के प्रयोगों ने सिद्ध कर दिया है कि यदि जापानी पद्धति पर सावधानी से खेती की जाय तो उपज दस गुना अधिक हो सकती है। आश्चर्यजनक होते

हुए भी इस बात को देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में किये गए प्रयोगों और उनके परिणाम ने सत्य करके दिखा दिया है।

चावल के लिए बंगाल बहुत प्रसिद्ध है—खाने में और पैदा करने में भी। वस्तुतः बंगाल को चावल की खान कह सकते हैं। वहां देशी पद्धति से भी धान अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक होता है। फिर जापानी पद्धति से खेती की जाय तो क्या कहना! पश्चिमी बंगाल के श्री वसन्तकुमार राय ने जापानी पद्धति से प्रति एकड़ १६१.५ मन धान पैदा करके देशभर में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। पश्चिमी बंगाल में देशी पद्धति से धान की खेती की औसत उपज प्रति एकड़ २० मन है। जापानी पद्धति से खेती करने पर यह औसत उपज प्रति एकड़ ३९ मन रही। इस प्रकार १९५३-५४ में कुल ६१,८३९ एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से खेती करके लगभग ४३,००० टन धान अधिक पैदा किया गया।

जापानी पद्धति से खेती करने में हैदराबाद का हाथ प्रमुख रहा। १९५४-५५ में देशभर में कुल २० लाख एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से खेती करने का लक्ष्य रक्खा गया था, जिसमें से ५० हजार एकड़ भूमि पर हैदराबाद में खेती हुई। हैदराबाद के किसानों ने बड़े उत्साह के साथ जापानी पद्धति को अपनाया। इस नई पद्धति से धान की औसत उपज प्रति एकड़ ३५०० से ४००० पौंड हुई, जो देशी पद्धति से खेती की प्रति एकड़ औसत उपज के पांचगुने से भी अधिक थी। यही नहीं, कुछ लोगों ने तो प्रति एकड़ १०,८७२ पौंड तक धान पैदा किया। १९५३-५४ में हैदराबाद के श्री धरमापुरम हेमा रेड्डी ने प्रति एकड़ १४५ मन धान पैदा किया और वह भारत सरकार द्वारा सम्मानित तथा पुरस्कृत किये गए।

कुर्ग एक छोटा-सा प्रदेश है, किंतु वहां लगभग ३० हजार खेत केवल धान के ही हैं। वहां के लोगों में जापानी पद्धति से खेती करने के लिए इतना उत्साह है कि १९५४-५५ में भारत सरकार ने पहले १० हजार एकड़ में जापानी पद्धति से खेती करने की योजना बनाई थी, किंतु वहां के लोगों ने ११ हजार एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से खेती की। वहां के लोगों ने 'कृषि युवक संघ' नामक एक संस्था बनाई है, जिसके प्रत्येक युवक सदस्य को अपने खेतों में जापानी पद्धति से खेती करना पड़ता है। १९५३-५४ में कुर्ग के श्री वी० के० वेंकट शुभा शैत्री ने प्रति एकड़ १३२.५ मन धान पैदा करके सम्मान और पुरस्कार प्राप्त किया।

जापानी पद्धति में मसूर प्रदेश ने जो उत्साह दिखाया, वह प्रशंसनीय है। १९५४-५५ में मैसूर में २० हजार एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से खेती करने का लक्ष्य सरकार ने रखा था, किंतु लोगों ने लगभग ९० हजार एकड़ भूमि में इस नई पद्धति से खेती की। जापानी पद्धति से वहां प्रति एकड़ औसत उपज १३०० पौंड हुई, जो देशी पद्धति की उपज से ५० प्रतिशत अधिक है। मैसूर के श्री बी० गंगाधरन ने प्रति एकड़ १२४.५ मन धान पैदा करके दिखा दिया है कि जापानी पद्धति से खेती करके उपज और भी अधिक बढ़ाई जा सकती है।

आंध्र राज्य के ८८४ गांवों में ६,९३६ एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से धान की खेती की गई, जिनमें उपज प्रति एकड़ ७०० पौंड अधिक हुई। असम में देशी पद्धति से धान की औसत उपज प्रति एकड़ ३० मन है, लेकिन जापानी पद्धति से खेती करने पर औसत उपज प्रति एकड़ ७० मन हुई। असम में डिब्रूगढ़ के पास

के श्री आनन्द दत्त ने प्रति एकड़ ११० मन १५ सेर धान पैदा किया।

बिहार में कुल जितनी भूमि में खेती होती है, उसके आधे भाग में केवल धान की ही खेती होती है। अतः बिहार में जापानी पद्धति द्वारा खेती करके देश की धान की औसत काफी बढ़ाई जा सकती है। बिहार के ८,२४४ गांवों में लगभग ४४.७२५ एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से खेती की गई। बिहार में देशी पद्धति से प्रति एकड़ औसत उपज १५ मन है, लेकिन जापानी पद्धति से खेती करके प्रति एकड़ औसत उपज ४० मन प्राप्त की गई। बिहार में देशी ढंग से धान की खेती करने में सौ रुपया प्रति एकड़ खर्च करना पड़ता है। जापानी पद्धति से खेती करने पर यह खर्च कुल दोसौ रुपया आया। लेकिन जापानी पद्धति से खेती करने पर जो उपज हुई उससे, सौ रुपया अधिक खर्च करके भी, किसान को लगभग सौ रुपया प्रति एकड़ का लाभ हुआ। कुछ किसानों की उपज इतनी अधिक हुई कि उन्हें प्रति एकड़ २५० रुपये का लाभ हुआ।

इस तरह हम देखते हैं कि देश के अनेक राज्यों में लोगों ने बड़े उत्साह के साथ जापानी पद्धति को अपनाकर धान की खेती की और अधिक-से-अधिक धान पैदा करने में उन्हें सफलता मिली। अधिक उपज से उनकी अपनी आय तो बढ़ी ही, देश में अन्न की कमी दूर करने में भी सहायता मिली।

जापानी ढंग से खेती करने में पानी, खाद और परिश्रम—इन तीनों की जरूरत पड़ती है। जहां कहीं इन तीनों में से एक की भी कमी हुई है, वहां जापानी पद्धति से खेती करने में सफलता नहीं मिली है। यही कारण है कि जहां पानी-बहुल प्रदेशों

ने जापानी पद्धति से खेती करके उत्साहवर्धक परिणाम दिखाये है वहां कुछ प्रदेश इस दिशा में उदासीन रहे हैं। इनमें उत्तर प्रदेश प्रमुख है। १९५४–५५ में उत्तर प्रदेश के २९ जिलों को जापानी पद्धति से खेती करने के लिए चुना गया था। कुल १,०१,११९ एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से खेती करने की योजना थी, किंतु केवल ७०,५८४ एकड़ भूमि में ही खेती हो सकी। उत्तर प्रदेश के कुछ किसानों ने उभरी हुई क्यारियां बनाने के प्रति असंतोष प्रकट किया, क्योंकि पानी के अभाव में उभरी हुई

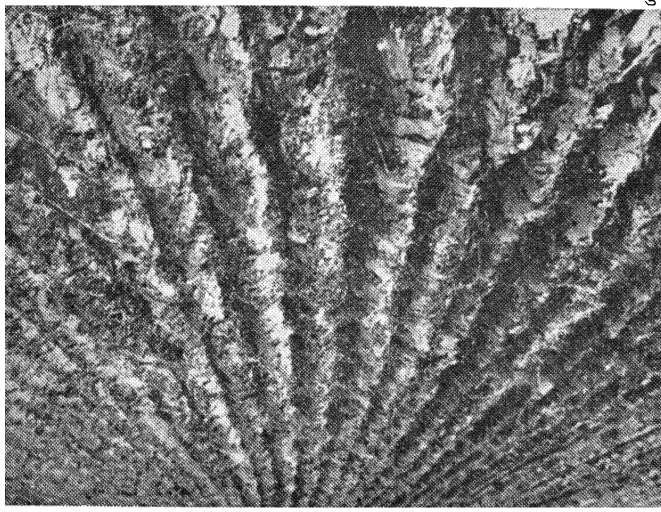

अच्छी फसल के लिए अच्छी जुताई होनी चाहिए।

क्यारियों को सींचना और कठिन हो जाता है। अतः कृषि-विशेषज्ञों ने मिलकर यह निश्चय किया कि जहां उभरी हुई क्यारियां नहीं बन सकती, वहां समतल क्यारियां बनाई जा सकती हैं, किंतु चारों ओर एक फुट चौड़ी छिछली सी नाली बना देनी

चाहिए, जिससे सिंचाई आदि में सुविधा हो।

उत्तर प्रदेश में एक मज़ेदार बात और हुई। कुछ जिलों में, जहां जापानी पद्धति से खेती करने का प्रयोग चल रहा था, पानी नहीं बरसा। सूखा पड़ गया। अतः धान की फसल जाती रही। कुछ किसानों ने अपने अज्ञान के कारण जापानी पद्धति पर एक प्रकार का दोष लगाया। उन्होंने कहा कि जापानी का अर्थ होता है—'जा पानी' अर्थात् पानी जाओ। इससे पानी नहीं बरसा, चला गया और सूखा पड़ गया। वस्तुतः ऐसी अज्ञान और अंधविश्वास की बातों के ही कारण हमारे किसान परिश्रमी होकर भी भूखे और नंगे हैं। जबतक इन अंधविश्वासों को दूर नहीं भगाया जायगा, सुख और सम्पत्ति हमसे कोसों दूर रहेगी। यदि हमें संसार के और देशों की तरह उन्नति करनी है तो हमें अपना दृष्टिकोण बदलकर वैज्ञानिक बातों और काम करने के वैज्ञानिक ढंगों को अपनाना होगा। प्रकृति पर विजय पाना कठिन अवश्य है, किंतु आज मनुष्य विज्ञान की सहायता से उसपर पूरी तरह विजय प्राप्त कर रहा है। देश में सिंचाई के साधनों का विस्तार हो रहा है। शीघ्र ही पानी की कमी दूर हो जायगी।

प्रयोगों से देखा गया है कि जापानी पद्धति से खेती करने में भारतीय किसान को रासायनिक या बनावटी खाद के कारण भी हानि उठानी पड़ी है। किंतु इसमें खाद का दोष नहीं है। खाद के प्रयोग करने में दोष है। रासायनिक खादें अपना प्रभाव डालने में बड़ी तेज होती हैं। अतः उनका प्रयोग पानी की व्यवस्था और जमीन की किस्म को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। अभी औसत भारतीय किसान रासायनिक खादों के प्रयोग में सिद्धहस्त

नहीं हुआ है। अतः उसे सरकार द्वारा नियुक्त प्रशिक्षण प्राप्त ग्राम-सेवकों से या अपने निकट के किसी कृषि-विशेषज्ञ से परामर्श करके ही रासायनिक खादों का प्रयोग करना चाहिए। यह पहले ही कहा जा चुका है कि रासायनिक खादें एक प्रकार की ओषधि जैसी हैं। जैसे ओषधि का प्रयोग हम किसी डाक्टर या वैद्य से पूछकर करते हैं वैसे ही रासायनिक खादों का भी प्रयोग किसी अनुभवी किसान, ग्राम-सेवक या कृषि-विशेषज्ञ से पूछकर ही करना चाहिए।

जहांतक परिश्रम का प्रश्न है, भारतीय किसान अत्यन्त परिश्रमी है। सिंचाई की सुविधा और खादों के प्रयोग का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वह जापानी पद्धति से धान की खेती करके अकेले भारत ही नहीं, संसार में सबसे अधिक उपज का रेकार्ड स्थापित कर सकता है। प्रमाण के रूप में 'रीडर्स डाइजेस्ट' के सितम्बर, १९५४ के अंक में प्रकाशित श्री सुरेश वैद्या के लेख की ये पंक्तियां प्रस्तुत हैं :

"पश्चिम भारत में नासिक का लक्ष्मण माली धान की पक रही बालियों को मुंह बाये देखता रहा है। अपनी सारी जिंदगी उसने किसानी की, लेकिन उसे ऐसा कोई वर्ष याद नहीं आया जबकि उसने इतनी बड़ी फसल देखी हो। बाद में जब उसकी फसल काटी गई तो प्रति एकड़ १७,५०० पौंड उपज हुई। कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली ने उसे सूचित किया कि प्रति एकड़ १७,५०० पौंड पैदा करके उसने संसार का रिकार्ड तोड़ दिया है। उसके पहले उस जमीन से और किसीने धान की इतनी उपज नहीं प्राप्त की थी। रातोंरात लक्ष्मण माली एक राष्ट्रीय ख्याति का व्यक्ति होगया।"

: ८ :

जापानी पद्धति का आकर्षण

प्रति एकड़ १७,५०० पौंड धान की उपज साधारण नहीं होती। यह इतनी आश्चर्यजनक उपज है कि कोई भी व्यक्ति इसे सुनकर चौंके बिना नहीं रह सकता। संसार के किसी भी देश में, यहांतक कि इस नई पद्धति की जन्म-भूमि जापान में भी, प्रति एकड़ इतनी उपज नहीं हुई। इस अभूतपूर्व उपज ने श्री लक्ष्मण माली को राष्ट्रीय ख्याति का ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का भी व्यक्ति बना दिया। श्री लक्ष्मण माली का पूरा नाम श्री लक्ष्मणगोपाल माली है। वह पश्चिम भारत के नासिक जिले के शिवरे (चौदवड़) स्थान के निवासी हैं।

श्री सुरेश वैद्या का 'भारत की चावल-सम्बन्धी क्रांति' शीर्षक एक लेख विस्तृत रूप से टोरन्टो के 'क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' में और संक्षेप में 'रीडर्स डाजेस्ट' के सितम्बर, १९५४ के अंक में प्रकाशित हुआ, जिसमें श्री लक्ष्मण माली द्वारा प्राप्त की गई उपज पर प्रकाश डाला गया था। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की इन पत्रिकाओं में भारत में प्रति एकड़ १७,५०० पौंड उपज की बात पढ़कर विदेशों में अनेक लोग आश्चर्यचकित होगये। कुछ लोगों को तो इतनी अधिक उपज पर जैसे विश्वास ही नहीं हुआ। अतः संसार के भिन्न-भिन्न देशों से कुछ लोगों ने अपना कुतूहल शान्त करने के लिए श्री लक्ष्मण माली की खेती की विधि जानकर अपने खेतों में स्वयं प्रयोग करके देखने की जिज्ञासा से

और कुछने जापानी पद्धति से धान की खेती की दिशा में भारत के इस क्रांतिकारी कदम और उसकी अभूतपूर्व सफलता पर मुग्ध होकर प्रशस्ति और प्रशंसा के पत्र भेजे। भारत के कृषि-मंत्री डा० पंजाबराव देशमुख के पास विदेशों से ऐसे पत्रों का तांता लग गया। इन पत्रों में कुछ तो इतने रोचक हैं कि उनका सारांश यहां देने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

ईरान सरकार के विदेश विभाग के श्री गुलाम अली ने अपने २३ सितम्बर, १९५४ के पत्र में तेहरान से लिखा—

"मैंने हाल में ही अमरीका की एक पत्रिका में पढ़ा कि भारत ने धान की उपज में संसार का रिकार्ड तोड़ने में सफलता प्राप्त की है। मैंने उस लेख का ईरानी भाषा में अनुवाद कराकर अपने कृषि-मंत्री की सेवा में भेजते हुए सुझाव दिया है कि यदि हम भी उस पद्धति का अनुकरण करें तो सम्भवत: ईरान को भी भारत की तरह सफलता मिल सके।

"इस उद्देश्य को और हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए यदि आप जापानी पद्धति अपनाने में भारतीय किसानों का मार्ग दर्शन करने के लिए प्रकाशित किये गए साहित्य और पुस्तिकाओं की कुछ प्रतियां भिजवा सकें तो हम आपके अत्यन्त आभारी होंगे।

"निस्संदेश भारत और ईरान दोनों देशों में धान की खेती की पद्धतियां लगभग एक-सी हैं।"

फिलिपाइन द्वीप-समूह से एक उत्साही युवक ने लिखा—

"आपको आश्चर्य होगा कि फिलिपाइन का निवासी होकर भी मैं अपने कृषि-सचिव को पत्र न लिखकर आपको लिख रहा हूं। आपको पत्र लिखने का कारण श्री सुरेश वैद्या का

सिंचाई की समुचित व्यवस्था के लिए बांधों का निर्माण

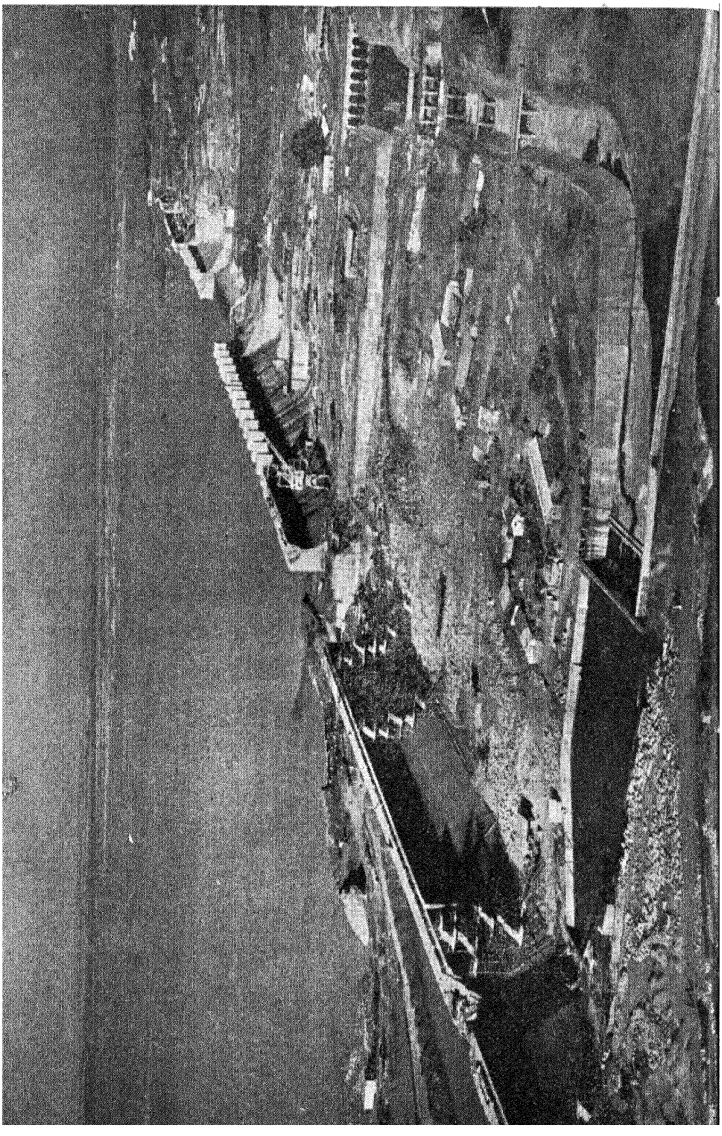

'भारत की चावल-सम्बन्धी क्रांति' शीर्षक लेख है जो 'रीडर्स डाइजेस्ट' और 'क्रिश्चियन साइंस मानीटर' में प्रकाशित हुआ है।

"मेरी अवस्था ३१ वर्ष की है। मुझे खेती का कोई पूर्व-अनुभव नहीं है, किन्तु खेती करने की मेरी इच्छा है। मैंने कुछ जमीन खरीदी है और स्वयं खेती करने का विचार है। मुझे उस नई पद्धति में बड़ी दिलचस्पी है जिसे अपनाकर आपके देशवासियों ने पुरानी पद्धति से प्राप्त उपज का कई गुना धान पैदा किया। आपके और हमारे दोनों देशों में पुरानी पद्धतियां प्रायः एक-सी हैं।

"मैं अपनी भूमि में नई पद्धति का प्रयोग करना चाहता हूं। यदि आप अपने कृषि-मंत्रालय द्वारा प्रकाशित जापानी पद्धति-सम्बन्धी पुस्तिकाएं और साहित्य भिजवा सकें तो अनुग्रह मानूंगा। साथ ही इस नई पद्धति के जन्मदाता डा० इवाव कामो का और किसी भारतीय युवक का भी पता चाहता हूं, जिनसे मैं इस विषय में पत्र-व्यवहार कर सकूं।

"यदि सम्भव हो तो लेखक और 'रीडर्स डाइजेस्ट' को मेरी ओर से धन्यवाद देने की कृपा करें।"

मनीला के 'नेशनल राइस प्रोड्यूसर्स एसोसियेशन' का पत्र—

"श्री सुरेश वैद्या के लेख में पढ़ा कि आपके मंत्रालय ने किसानों को धान की खेती की जापानी पद्धति समझाने के लिए आठ पृष्ठों की एक सचित्र पुस्तिका प्रकाशित की है। इस वर्ष हमें अपने देश में दो लाख टन चावल बाहर से मंगाना पड़ रहा है। चावल के सम्बन्ध में हम आत्म-निर्भर होना चाहते हैं।

"हमारी प्रार्थना है कि आप हमें उक्त साहित्य भेजकर उसे फिलिपाइन में फिर से छापने की अनुमति प्रदान करने की

कृपा करें।"

मेक्सिको की 'फोमेंटो एग्रीकोला मेक्सिकैनो' नामक एक कृषि-सम्बन्धी कम्पनी का पत्र आया—

"श्री सुरेश वैद्या का लेख पढ़कर हमें आश्चर्य हुआ कि आपके देश में जापानी पद्धति से खेती करने पर प्रति एकड़ इतनी अधिक उपज हुई !

"मैक्सिको में चावल की काफी उपज और खपत होती है। हमारे और आपके दोनों देशों में स्थिति एक-सी है। हम समझते हैं कि हम भी आपकी तरह जापानी पद्धति अपना सकते हैं।

"एक कृषि-कम्पनी होने के नाते धान उगाने की आपकी नई पद्धति के प्रति हमारी दिलचस्पी होना स्वाभाविक है। आपकी उपज के बराबर हमारे खेतों में धान की उपज कहीं नहीं होती। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप जापानी पद्धति-सम्बन्धी जो साहित्य अपने किसानों में वितरित कर रहे हैं उसकी कुछ प्रतियां हमें भेजने की कृपा करें, जिससे हम भी अपने यहां धान की खेती में सुधार कर सकें।"

ब्राज़ील के एक किसान ने लिखा—

"'रीडर्स डाइजेस्ट' के एक लेख में भारत में क्रांतिकारी पद्धति द्वारा धान की असाधारण उपज के बारे में पढ़ा। मैं स्वयं एक छोटा-सा किसान हूं और अपनी जमीन में इस पद्धति का प्रयोग करना चाहता हूं। आपसे प्रार्थना है कि इससे सम्बन्धित साहित्य और सूचनाएं भेजकर अनुगृहीत करें।

"मुझे विश्वास है कि आपके द्वारा भेजे गए साहित्य में नमक का घोल बनाने, बीज चुनने और खादों के प्रयोग आदि के संबंध में सारी सूचना मिल जायगी। यदि आप सबसे अधिक

उपज देनेवाले धान का एक पौंड बीज भेज सकें तो आपकी बड़ी कृपा होगी।"

यूनान से आये हुए एक मर्मस्पर्शी पत्र में लिखा था—

"'रीडर्स डाइजेस्ट' के एक लेख में पढ़ा कि भारत में श्री लक्ष्मण माली ने धान उगाने की नई पद्धति से प्रति एकड़ १७,५०० पौंड धान पैदा करके संसार का रिकार्ड तोड दिया है। इस आश्चर्यजनक उपज का कारण, जैसा कि डा० देशमुख ने कहा है, कुछ अंशों में भारत की उपजाऊ भूमि हो सकती है। किंतु प्रकाशित लेख के अनुसार बोने और रोपने की नई पद्धति ही इसका मुख्य कारण है। उक्त लेख में यह भी लिखा है कि आपके कृषि-मंत्रालय ने बहुत-सी सचित्र पुस्तिकाओं का वितरण किया है। क्या आप ऐसी कोई पुस्तिका भेजने की कृपा कर सकते हैं, जिसमें नई पद्धति से खेती करने पर पूरा प्रकाश डाला गया हो।

"जैसाकि आप जानते हैं, यूनान एक बहुत ही गरीब देश है और सफलतापूर्वक धान की खेती यहां के लिए बड़ा महत्व रखती है। इस दिशा में आपकी सहायता पाकर हम बड़े कृतज्ञ होंगे।"

क्यूबा के एक किसान इंजीनियर का पत्र—

"मैं धान की खेती करता हूं और कृषि-इंजीनियर भी हूं। मैंने 'भारत की चावल-संबंधी क्रांति' लेख रुचिपूर्वक पढ़ा। इसमें जापानी पद्धति से भारत में की गई धान की खेती के अनुभवों पर प्रकाश डाला गया है।

"मैं टिकट के लिए एक डालर भेज रहा हूं। अपने विशेषज्ञों के अनुभव-संबंधी पुस्तिका हवाई डाक से भेजने की कृपा करें।

"धान की खेती में आपके विशेषज्ञों ने जो सफलता प्राप्त की है उसके लिए उन्हें मेरी हार्दिक बधाई।"

लिटिल राक, अरकान्सस से एक जिज्ञासापूर्ण पत्र—

"श्री सुरेश वैद्या के एक लेख में पढ़ा कि श्री लक्ष्मण माली ने प्रति एकड़ १७,५०० पौंड धान पैदा करके संसार में एक रिकार्ड स्थापित किया है।

"मैं जानना चाहता हूं कि इतनी उपज करने के लिए उन्हें क्या करना पड़ा। किस किस्म का धान उन्होंने लगाया था? क्या उसमें से कुछ धान मुझे मिल सकता है? कुछ पौंड धान का क्या मूल्य होगा? मैं यह देखना चाहता हूं कि हमारी जलवायु और जमीन में वह किस प्रकार उगता है?"

संभवतः विदेश के उक्त अनेक पत्र-लेखकों की तरह पाठक भी यह जानने के लिए व्यग्र होंगे कि श्री लक्ष्मण माली की संसार को चकित कर देनेवाली इस सफलता का क्या रहस्य है? उन्होंने किस प्रकार खेती करके प्रति एकड़ १७,५०० पौंड धान की उपज की? अतः उनकी सफलता का रहस्य अथवा उनके खेती करने की विधि का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है।

श्री लक्ष्मण माली को दो एकड़ भूमि में धान बोना था। अप्रैल के महीने में उन्होंने उस भूमि को ट्रैक्टर से जोत दिया। इसके बाद मई में देशी हल से जुताई करके दो बार बक्खर दे दिया। वर्षा से पहले खेत में २५ गाड़ी कम्पोस्ट की खाद डाल दी और बरसात का पहला पानी पड़ते ही उन्होंने उसमें ४० पौंड सनई बो दी। लगभग सात सप्ताह बाद जब सनई के पौधे बड़े होगये तो जोतकर उन्हें खेत में दबा दिया गया। जब पानी

और मिट्टी में दबकर सनई खूब सड़ गई तो खेत को अच्छी तरह जोतकर कीचड़ कर दिया गया। अब खेत रोपाई के लिए तैयार होगया।

धान का बीज भी उन्होंने कहीं बाहर से नहीं मंगाया था। अपने ही यहां का कमोद नामक धान का स्वस्थ और मोटा बीज उन्होंने छांटकर लिया। बीज को नमक के घोल में डालकर लकड़ी से चलाने के बाद जो बीज नीचे बैठ गया उसे निकाल-

बढ़िया खाद तैयार करने के लिए गड्ढे

कर सुखा लिया। क्यारियों में डालने के लिए उन्होंने कुल २० पौंड बीज लिया। बीज डालने के लिए उन्होंने जापानी पद्धति से उभरी हुई क्यारियां तैयार की थीं। पौध अच्छी और मजतबू

हो, इसलिए उन्होंने क्यारियों में दो बार अमोनियम सल्फेट का भी प्रयोग किया। जब पौधे सवा फुट ऊंचे होगये तो खेत में रोपाई के लिए निकाल लिये गए।

रोपाई करने से पहले खेत में १४ मन मूंगफली की खली डाली गई। फिर दस-दस इंच की दूरी पर पौध की रोपाई की गई। एक स्थान पर एक गुच्छ में केवल तीन-चार पौध ही रोपी गई। रोपाई के बाद तीन बार निराई और कुलपाई की गई। रोपाई के एक मास बाद दस मन रासायनिक खाद का मिश्रण डाला गया। उसके डेढ़ मास बाद दो हंडरवेट अमोनियम सल्फेट डाला गया। फिर डेढ़ मास बाद १० पौंड बोरैक्स दिया गया। पौधों की वृद्धि इस प्रकार हुई कि देखते ही बनता था। एक-एक पौध में ४०-४५ दौजियां फूटीं। नवम्बर के आखिरी दिन जब फसल काटी गई तो वह जैसे सोना बन गई थी। मड़ाई करने पर उस दो एकड़ भूमि में प्रति एकड़ १७,५०० पौंड धान की उपज हुई।

श्री लक्ष्मण माली ने धान की इस फसल पर ४५२ रुपये खाद में और ६९८ रुपये फुटकर खर्च किये। कुल ११५० रुपये खर्च करके उन्होंने १४१६ रुपये का लाभ किया।

श्री लक्ष्मण माली कोई चमत्कारी पुरुष नहीं हैं। भारत के अन्य किसानों की तरह एक किसान हैं। इतनी अधिक उपज उन्होंने किसी चमत्कार से नहीं, अपनी लगन और परिश्रम से की। लगन हो और पूरा परिश्रम किया जाय तो सफलता की चोटी तक पहुंचा जा सकता है। इस बात का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण होगा ?

: ६ :

जापानी पद्धति से खेती का भविष्य

संस्कृत की एक उक्ति है 'क्वचित् दोषो गुणायते'—अर्थात् कहीं-कहीं दोष भी गुण बन जाता है। भारत में धान की खेती के संबंध में यह उक्ति पूरी तरह चरितार्थ हुई। यदि देश में अन्न की कमी न होती तो संभवतः हमारा ध्यान धान की खेती की जापानी पद्धति की ओर न जाता। देश में अन्न की कमी ने हमारी आंखें खोल दीं। इस कमी को दूर करने के लिए 'अधिक अन्न उपजाओ' आंदोलन का सूत्रपात हुआ, जिसे देश-व्यापी और पूरी तरह सफल बनाने के लिए देशवासी और सरकार दोनों प्राणपण से जुट गये। भारत के लगभग तीन-चौथाई लोगों का निर्वाह मुख्यतः चावल पर ही होता है। देश में खेती के योग्य जितनी भूमि है उसके एक-तिहाई में केवल धान की ही खेती होती है। गेहूं की खेती के क्षेत्रफल से धान की खेती का क्षेत्र-फल तिगुना है। अतः लोगों की आवश्यकता और धान की खेती के क्षेत्रफल को देखते हुए देश के कृषि-विशेषज्ञों और सरकार का ध्यान अधिक-से-अधिक चावल पैदा करने की ओर गया। चावल अधिक पैदा हो, इसके लिए धान की खेती में सुधार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। कृषि-अनुसंधानशालाओं और सरकारी तथा गैर-सरकारी फार्मों में धान की उपज बढ़ाने पर तेजी से अनुसधान होने लगा।

इसी बीच एक आकस्मिक घटना के रूप में भारत में जापानी

पद्धति से धान की खेती का सूत्रपात हुआ। वह घटना इस प्रकार है। श्री प्राणनाथ कापड़िया सिल्क और मशीनों के व्यवसायी के रूप में १८ वर्ष जापान में रहे। द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने पर १९४७ में वह भारत चले आये और गांधीजी के ग्रामोद्योग-आंदोलन में शामिल होगये। बाद में वह बम्बई के निकट कोरा ग्रामोद्योग केन्द्र के मंत्री होगये। इस केन्द्र के पास २८ एकड़ भूमि थी, जिसमें से १३ एकड़ में केवल धान की ही खेती होती थी। श्री कापड़िया ने धान की खेती करना यहीं सीखा।

१९४८ में जब वह फिर जापान जानेवाले थे, बम्बई में जोर का तूफान आया और केन्द्र की धान की फसल चौपट होगई। श्री कापड़िया को इसका बहुत दुःख हुआ। जापान पहुंचने पर उन्होंने अपने एक बैंकर मित्र से इसकी चर्चा की, जिसने उन्हें बतलाया कि जापान में तूफान से धान की फसलों की क्षति नहीं होने पाती। मित्र के कहने से श्री कापड़िया ने जापान में धान की खेती की साधारण जानकारी प्राप्त की। भारत लौटने पर उन्होंने उसका प्रयोग किया, जिसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली। इस सफलता से प्रभावित होकर श्री हरिश्चद्र पाटिल ने भी श्री कापड़िया का साथ दिया। अगले वर्ष दोनों ने मिलकर जापानी पद्धति से धान की खेती की। फसल दूनी हुई। फिर तो किस प्रकार बम्बई सरकार द्वारा वे विस्तृत अध्ययन के लिए जापान भेजे गए, किस प्रकार उन्होंने वहां स्वयं खेती की और किस प्रकार लौटने पर कोरा ग्रामोद्योग केन्द्र में किये गए उनके प्रयोग की सफलता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ, इन सबका विवरण पहले दिया जा चुका है।

श्री कापड़िया के प्रयोग के कई वर्ष पहले ही पश्चिम बंगाल

के कृषि-संचालक ने उड़ीसा में इस नई पद्धति का प्रचार करना चाहा था, किंतु उन्हें विशेष सफलता न मिली। वस्तुतः यदि भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद का ध्यान इधर न जाता, वह केन्द्रीय कृषि-मंत्री को जापानी पद्धति का देश के अन्य भागों में भी प्रयोग करने के लिए न लिखते और बम्बई सरकार विशेष दिलचस्पी न लेती तो पश्चिम बंगाल के कृषि-संचालक द्वारा उड़ीसा में किये गए प्रयोगों की तरह कोरा ग्रामोद्योग केन्द्र के प्रयोग भी सीमित होकर रह जाते। आज देश में जापानी पद्धति से धान की खेती का जो व्यापक रूप है, वह दिखाई न देता।

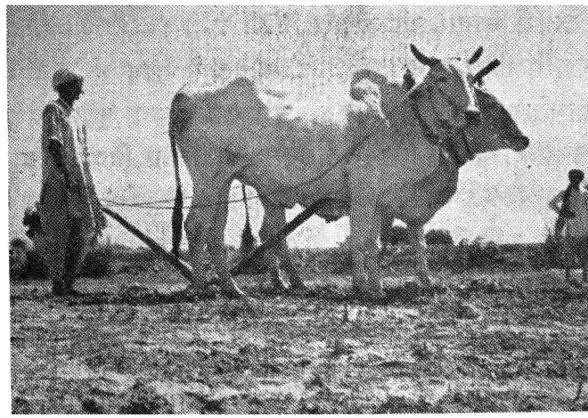

भारत की समृद्धि उसके किसान पर निर्भर है।

भारत सरकार द्वारा जापानी पद्धति से धान की खेती के आंदोलन का श्रीगणेश १५ मार्च, १९५३ को किया गया। इस दिशा में सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ओर से अभियान शुरू हुआ। 'गांधी-स्मारक-निधि' के कार्यकर्त्ताओं से लेकर

केन्द्रीय और राज्य सरकार के मंत्रियों तक ने इस आंदोलन को सफल बनाने में अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया। संयोग-वश उस वर्ष वर्षा ने भी अच्छी तरह साथ दिया। यही कारण है कि पहले ही वर्ष देश के लगभग २,२५,००० गांवों में चार लाख एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से धान की खेती शुरू की गई, जिसमें नई पद्धति की प्रायः सभी बातों को पूरी तरह अपनाया गया। इसके अतिरिक्त लगभग ३० लाख एकड़ भूमि में जापानी पद्धति को आंशिक रूप से अपनाते हुए खेती की गई। फलस्वरूप देश में धान की प्रति एकड़ औसत उपज बढ़-कर ३८.४४ मन होगई। कुल २७८ लाख टन धान पैदा हुआ और देश में चावल की कीमत गिरने लगी।

देश में जिस समय जापानी पद्धति से धान की खेती करने का आन्दोलन शुरू किया गया उस समय कुछ कृषि-विशेषज्ञों और अधिकारी व्यक्तियों ने इसपर ध्यान न दिया। बहुत-से लोगों का कहना था कि जापानी पद्धति में कोई विशेष बात सीखने की नहीं है और कई पीढ़ियों से चलती आई खेती की अपने देश की पद्धति ही सबसे अच्छी है। जब जापानी पद्धति से खेती करने के कारण चावल का भाव गिरने लगा तो कुछ लोगों ने इस नई पद्धति का फिर विरोध किया और कहा कि चावल का भाव और अधिक गिर जाने से देश में किसान की स्थिति और खराब हो जायगी, क्योंकि दूसरी चीजों का भाव ऊंचा है। किन्तु भारत सरकार ने लोगों को समझाया कि भूखे रहने की अपेक्षा चावल का भाव गिरना कहीं अच्छा है। फिर यदि चावल का भाव गिरने से किसान को अन्य चीजों के बढ़े हुए भावों के कारण थोड़ा घाटा होता है तो वह अधिक उपज

द्वारा उसे पूरा कर सकता है। इस प्रकार अनेक विरोधों का सामना करते हुए देश में जापानी पद्धति से धान की खेती करने का आन्दोलन चलता रहा।

जापानी पद्धति से धान की खेती करने में पहले वर्ष जो सफलता मिली उससे किसानों और कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ा और १९५५-५६ के वर्ष में २० लाख एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से धान की खेती करने का लक्ष्य रक्खा गया। किंतु देश के भिन्न स्थानों में बाढ़ और सूखा के प्रकोप के कारण इस लक्ष्य की पूर्ति न हो सकी। फिर भी लगभग १२ लाख एकड़ भूमि में इस पद्धति द्वारा खेती की गई।

१९५५-५६ के वर्ष में जापानी पद्धति से धान की खेती का क्षेत्र बढ़कर २० लाख एकड़ से भी अधिक होगया। यह इस बात का प्रमाण है कि देश में लोग जापानी पद्धति के लाभ समझने लगे हैं। जिस किसान ने एक बार जापानी पद्धति से खेती की, फिर वह इसके लाभ को अच्छी तरह समझ जाता है। उसके खेत में हुई उपज को देखकर उसके पड़ोसी दूसरे किसानों के भी मुंह में पानी आ जाता है। वे भी जापानी पद्धति से खेती शुरू कर देते हैं। भारत सरकार का कृषि-मंत्रालय 'राष्ट्रीय प्रचार सेवा' और 'सामुदायिक परियोजना प्रशासन' के द्वारा जापानी पद्धति से धान की अधिक-से-अधिक खेती करने के प्रचार और प्रसार में प्रयत्नशील है। विश्वास किया जाता है कि दूसरी पंच-वर्षीय आयोजना के अंत (१९६०-६१) तक देश में एक करोड़ एकड़ भूमि में जापानी पद्धति से धान की खेती होने लगेगी और इस तरह देश में धान की उपज लगभग ५० लाख टन बढ़ जायगी।

जापानी पद्धति में खाद और पानी की उचित व्यवस्था

अत्यंत आवश्यक है। सिंचाई के साधनों में वृद्धि करने की ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से गया है। देश में नहरें और नल-कूपों का जाल बिछाकर यह कमी पूरी की जा रही है। रासायनिक और कम्पोस्ट की खादें भी किसानों को उचित मूल्य पर दिलाने की व्यवस्था तो है ही। उन्हें फसल के बाद दाम देने की और दामों में भी कुछ प्रतिशत सहायता देने की सरकार की ओर से व्यवस्था है।

भिन्न-भिन्न स्थानों की भिन्न-भिन्न भूमि और जलवायु में अच्छी तरह उगने के लिए धान की किस्मों में भी सुधार किये गए हैं। भारतीय कृषि-अनुसंधान केन्द्रों में इस विषय पर अनुसंधान-कार्य बराबर चल रहे हैं। हाल ही में कश्मीर में होनेवाले अनुसंधानों ने सिद्ध कर दिया है कि ७००० फुट की ऊंचाई पर भी धान की खेती अच्छी तरह हो सकती है।

जापानी पद्धति से धान की अधिक उपज से प्रभावित होकर कुछ उत्साही लोगों ने मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास और गन्ने की खेती पर भी इस पद्धति का प्रयोग किया है। उन्हें इस दिशा में भी अच्छी सफलता मिली है। आशा है कि धान की खेती के साथ-साथ अन्य फसलों में भी जापानी पद्धति के पूर्ण या आंशिक उपयोग द्वारा देश के अन्न-भंडार में और भी वृद्धि करने में सहायता मिलेगी।

इतने थोड़े समय में ही धान की खेती की जापानी पद्धति ने देश की उपज में जो क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है, उसे देखते हुए विश्वास है कि यदि हमारे किसान पूर्ण रूप से इस पद्धति को अपनालें तो कुछ ही वर्षों में अन्न के सम्बन्ध में देश की स्थिति में बहुत सुधार हो सकता है।

●

'मंडल' के

ये चार प्रकाशन

१. ग्रामोद्योग

भारतीय लोक-जीवन तथा अर्थ-व्यवस्था में ग्रामोद्योगों के स्थान एवं महत्व का बोध करानेवाली सचित्र पुस्तक.

२. नये जीवन की ओर

बाल तथा नारी-कल्याण के लिए होनेवाले कार्यों का बड़ी सरस तथा सुन्दर शैली में सिंहावलोकन.

३. सहकारी समाज

सहकारिता के आरंभ, विकास, मौजूदा हालत तथा भावी संभावनाओं पर प्रकाश डालनेवाली ज्ञानवर्द्धक पुस्तक.

४. धान की खेती

धान के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्तम भूमि, खाद तथा जापानी पद्धति से खेती करने की विधि आदि की विस्तृत जानकारी देनेवाली सचित्र पुस्तक.

सस्ता साहित्य मण्डल

एक रुपया